दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९४ तंत्री-जगजीवन बाउचंद दोशी, सावरकुंडला वर्ष २४ अंक नं० २

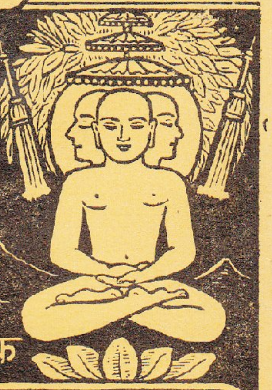

आदर्श पुत्र और आदर्श माता

पुत्र कहता है—

हे माता! निजानंद का पिपासु मेरा आत्मा अब इस संसार के दुःखों से अत्यंत भयभीत हो गया है... चैतन्यसुख के सिवा अन्यत्र कहीं इसे चैन नहीं... आत्मा के आनंद में ही मेरा चित्त लग रहा है... बाह्य निःसार भाव तो अनंत काल तक किये, अब वहाँ से हटकर मेरी परिणति अंतर में ढलती है... अंतर में जहाँ मेरा आनंद भरा है, वहाँ मैं जाता हूँ... हे माता! मुझे आशीर्वाद सहित अनुमति दो।

माता कहती है—

हे पुत्र! जो तेरा मार्ग है, वही मेरा मार्ग है। तेरा आत्मा भवदुःख से छूटकर आत्मिक सुख प्राप्त करे, उससे अच्छा क्या है?—इसप्रकार माता अपने पुत्र को हर्ष सहित सच्चे सुख की प्राप्ति का आशीर्वाद देती है।

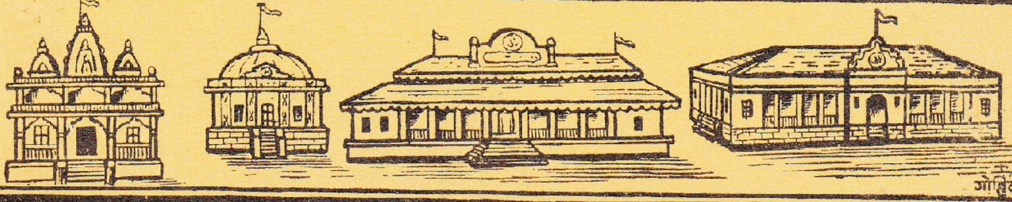

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जून १९६८ वार्षिक मूल्य ३) रुपये (२७८) एक अंक २५ पैसा [ज्येष्ठ सं० २४९४

आत्मकार्य की प्रेरणा

गुरुदेव बारम्बार कहते हैं कि—अरे जीव! तू अपने स्वभाव की महिमा कर। चार गतियों के शरीर धारण करना वह तो लज्जा है। अशरीरी आत्मा में उपयोग लगाकर, उसे स्वविषय बनाकर उसमें स्थिर हो तो यह लज्जाजनक जन्म छूट जायें और आनन्दजनक सिद्धपद प्रगट हो।

निजस्वयप की प्राप्ति, वह आत्मार्थी का मनोरथ है। अपने स्वरूप के बिना एक क्षण भी आत्मार्थी को अच्छा नहीं लगता। **आत्मप्राप्ति से रहित जीवन** आत्मार्थी कैसे जी सकता है?

निजस्वरूप के अंतरंग प्रयास से सम्यक्त्व अत्यंत सुगम होने पर भी जीव ने इतने दीर्घकाल तक वह कार्य क्यों नहीं किया?—उसका भी खेद छोड़कर अब प्रसन्नता एवं उत्साह से जीव को वह कार्य तत्काल **सद्य एव** करनेयोग्य है।

साधक संत हमें निरंतर आत्मा की कैसी प्रेरणा दे रहे हैं। मानों साक्षात् सम्यक्त्व ही दे रहे हों। जिनके जीवन का सूक्ष्मता से अवलोकन करने पर भी सम्यक्त्व हो जाये—ऐसे संत हमारे समक्ष विराजमान हैं और निरंतर हम पर कृपा कर रहे हैं। उस कृपा के प्रताप से हमें अपना स्वानुभवकार्य साध लेना है। सब कुछ भूलकर एक आत्मकार्य में ही समग्र शक्ति लगा देना है।

भोगभूमि में भगवान ऋषभदेव के आत्मा को सम्यक्त्व प्राप्त करानेवाले श्री प्रीतिंकर मुनिराज के शब्दों में कहें तो—

'तद्गृहाण अद्य सम्यक्त्वं तत्लाभे काल एष ते'

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

जून : १९६८ ☆ ज्येष्ठ, वीर नि०सं० २४९४, वर्ष २४ वाँ ☆ अंक : २

वीर प्रभु के वंशज

नंदी संघ की प्राकृत-पट्टावलि के अनुसार महावीर स्वामी की २९वीं पीढ़ी में अर्हत्बली मुनिराज हुए; ३०वीं पीढ़ी में माघनंदी मुनिराज हुए। माघनंदीस्वामि के दो शिष्य—(१) जिनसेन स्वामी, (२) धरसेन स्वामी।

जिनसेन स्वामी के शिष्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य।

धरसेन स्वामी के शिष्य श्री पुष्पदन्त-भूतबलि (विद्या अपेक्षा से)।

इस हिसाब से धरसेन स्वामी वर्द्धमान तीर्थंकर की ३१वीं पीढ़ी में हुए और कुन्दकुन्द स्वामी तथा पुष्पदन्त भूतबलि आचार्य ३२वीं पीढ़ी में हुए; इसलिये धरसेन स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य के काका-गुरु होते हैं। कुन्दकुन्द स्वामी तथा पुष्पदन्त-भूतबलि स्वामी (दूसरी पीढ़ी में) गुरुभाई होते हैं।

षट्खंडागम सिद्धांत पर जो अनेकों टीकाएँ रची गई हैं उनमें सबसे पहली टीका परिकर्म है, और उस 'परिकर्म' की रचना कौण्डकौण्डपुर में श्री पद्मनंदि मुनि ने (-कुन्दकुन्दाचार्य ने) की थी। षट्खंडागम के छह खंडों में से प्रथम तीन खंडों पर परिकर्म नामक बारह हजार श्लोक प्रमाण टीका ग्रंथ की रचना उन्होंने की थी। धवल-जयधवल टीका में वीरसेन स्वामी ने अपने कथन की पुष्टि के लिये ही स्थानों पर 'परिकर्म' के कथन का उल्लेख किया है।

श्रुत-परिचय

प्रश्न—'श्रुत पंचमी' पर्व कब से प्रारंभ हुआ ?

उत्तर—आज से करीब १९०० वर्ष पूर्व गिरनार की चंद्र गुफा में धरसेन स्वामी नाम के धुरंधर वीतरागी संत निवास करते थे। वर्द्धमान स्वामी की दिव्यध्वनि के उत्तराधिकार में उन्हें अंगपूर्व के जिस पवित्र श्रुतज्ञान की प्राप्ति हुई थी, वह उन्होंने पुष्पदंत और भूतबलि मुनिवरों को दिया। उन दोनों मुनियों ने दिव्यध्वनि के उस अंश को षट्खंडागम सिद्धांतरूप से सूत्रारूढ़ किया और इसप्रकार उस श्रुत को चिरंजीवी बनाया। उस श्रुत के प्रति महान भक्ति एवं उत्साह से अंकलेश्वर में चतुर्विध संघ ने श्रुत का महा महोत्सव ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन किया... तभी जैन समाज में ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी का दिन श्रुत पंचमी के रूप में प्रसिद्ध हुआ। जिस षट्खंडागम सिद्धांत की पूजा के निमित्त से श्रुत पंचमी पर्व प्रारंभ हुआ, वह षट्खंडागम (धवला टीका सहित) छपकर प्रकाशित हो चुका है और मुमुक्षुओं के महाभाग्य से जिनवाणी का यह अंश आज स्वाध्याय के लिये सुलभ बन गया है।

प्रश्न—धवल, महाधवल और जयधवल क्या है ?

उत्तर—'धवला' वह षट्खंडागम नाम के महान सिद्धांतसूत्र की टीका है और 'जयधवला' वह कषाय प्राभृत नाम के महान सिद्धांतसूत्र की टीका है। इन दोनों टीकाओं के रचयिता श्री वीरसेन स्वामी हैं। जयधवला टीका का शेष भाग श्री जिनसेन स्वामी ने पूर्ण किया है।

षट्खंडागम के रचयिता श्री पुष्पदंत तथा भूतबलि स्वामी हैं। वर्द्धमान तीर्थंकर की दिव्यवाणी में इंद्रभूति गणधर ने जो बारह अंगों की रचना की, उसमें से दृष्टिवाद अंग का एक अंश षट्खंडागमरूप से गूँथा गया है; जिस पर वीरसेन स्वामी ने ७२०००-बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण टीका की रचना की है और जो सैकड़ों वर्ष से मूलबिद्री में ताड़पत्रों पर लिखी

हुई सुरक्षित है। पिछले कुछ वर्षों में वह हिन्दी अनुवाद सहित छपकर १६ पुस्तकों में प्रकाशित हुआ।

कषाय प्राभृत के रचयिता गुणधर स्वामी हैं; यतिवृषभ स्वामी के चूर्णिसूत्रों द्वारा उसकी स्पष्टता की है और वीरसेन तथा जिनसेन स्वामी ने उस पर जयधवला टीका ६००००-साठ हजार श्लोक प्रमाण रची है जो सैकड़ों वर्षों से ताड़पत्रों पर लिखी हुई मूलबिद्री में सुरक्षित है और अब थोड़े वर्षों से वह हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हो रही है।

षट्खंडागम में छह खंड (छह अधिकार) हैं; उनमें छठवें खंड का नाम महाबंध है, जो खूब विस्तृत है और वही महाधवल के रूप में प्रसिद्ध है। इस महाबंध की भी ताड़पत्र पर लिखी हुई प्रति मूलबिद्री के शास्त्री भंडार में सुरक्षित है और कुछ ही समय पूव हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हो चुकी है। उसकी सात पुस्तकें हैं। इस धवल, महाधवल, जयधवलरूप जिनवाणी की मूलप्रतियाँ ताड़पत्र पर हैं, उनके दर्शन तो दक्षिण देश के मूलबिद्री नगर में महाभाग्य से होते हैं; और उसकी छपी हुई प्रतियों के दर्शन तो अब देशभर में स्थान-स्थान पर सुलभ हो गये हैं... यह भी अपना महा भाग्य है।

[धवला पुस्तक नं. १, १५ साल से अप्राप्त है, समाज में उसकी बहुत मांग है और प्रार्थना है कि ब्रह्मचारी जीवराज ग्रंथमाला उसे शीघ्र प्रकाशित करे।]

ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी का दिन श्रुत पंचमी के रूप में प्रसिद्ध है। श्रुत पंचमी अर्थात् श्रुतज्ञान की आराधना का महान पर्व वीतरागी संत जिनवाणी का जो अमूल्य उत्तराधिकार हमें दे गये हैं उसकी आराधना का और प्रभावना का संदेश हमें श्रुत पंचमी देती है; ऐसे श्रुत पंचमी पर्व को हम श्रुत भक्तिपूर्वक मनायें।

पृथ्वी की प्रदक्षिणा

[आधुनिक विज्ञान के साथ जैन भूमिति की संधि किस प्रकार है—तत्वसंबंधी प्रकाश डालता हुआ यह प्रकरण विज्ञान युग के अभ्यासियों को उपयोगी होगा] —संपादक

जयश्री बहिन जैन (रांची) ने निम्नानुसार दो प्रश्न आत्मधर्म में पूछे थे—

(१) जब सूर्य और चंद्र यह देवों के विमान हैं तो वे गोलाकार में क्यों चमकते हैं ? विमान के आकार में क्यों नहीं ?

(२) ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वी समतल है और बिल्कुल गेंद के आकार की नहीं हैं; तो फिर रशियन अवकाशयात्री स्व० 'गागारिन' तथा अमेरिकन अवकाशयात्री 'गार्डनर कूपर' आदि उसकी परिक्रमा किस प्रकार कर सके ? उन्होंने तो पृथ्वी के अनेक चित्र भी लिये हैं।

इन दोनों प्रश्नों के विस्तृत उत्तर बम्बई से भाईश्री विमलचंद्रजी जैन, बी.एससी. ने भेजे हैं, जिन्हें हम साभार यहाँ दे रहे हैं। साथ ही चित्र भी दे रहे हैं, ताकि सरलतापूर्वक समझ में आ सके।

(१) ('विमान' का अर्थ है देवों का निवास स्थान; उसका आकार आजकल के हवाईजहाज जैसा ही होना चाहिये, ऐसा जरूरी नहीं है... अनेक प्रकार के विमान हो सकते हैं।) सूर्य-चंद्र के विमान अर्धगोल हैं अर्थात् अर्धगोलाकार हैं। इस भूमंडल (पृथ्वी) पर से हमें सूर्य-चंद्र का जो निचला भाग दिखायी देता है, वह अर्धगोलाकार है और ऊपर का भाग थाली जैसा गोल है (देखिये चित्र) ज्योतिषी देव ऊपर के भाग में निवास करते हैं। उनके शरीर हमारे जैसे स्थूल औदारिक नहीं है किंतु वैक्रियक ही हैं-जो कभी स्थूल विक्रिया हमारी सामने करे, तब ही हम उसे देख सकते हैं।

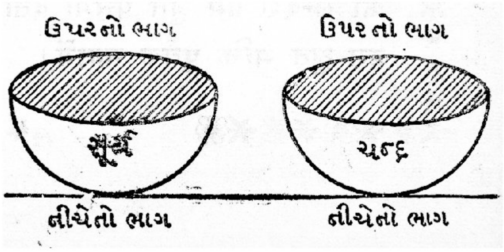

(२) अब आगे जम्बूद्वीप का चित्र देखिये। जम्बूद्वीप के दक्षिण भाग में भरतक्षेत्र नाम का एक रमणीय देश है; उसमें एक आर्यखंड और पाँच म्लेच्छखंड—इसप्रकार कुल छह भाग

हैं। विजयार्द्ध पर्वत तथा गंगा, सिंधु महानदियों द्वारा भरतक्षेत्र के छह भाग हुए हैं।

(देखिये चित्र)

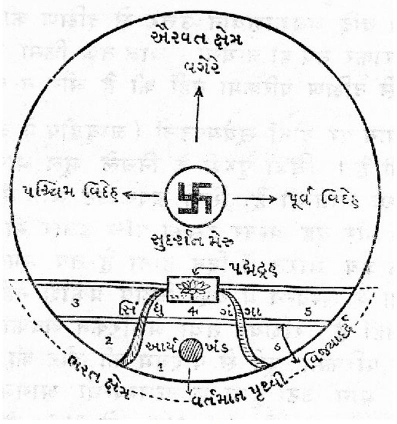

आर्यखंड के मध्य में एक योजन अर्थात् पाँच हजार मील भूमि ऊपर उठी हुई है, उस उठी हुई भूमि पर हम रहते हैं। इस उठी हुई भूमि में एक ओर अपना भारतवर्ष है और उसके सामनेवाले दूसरे भाग में अमेरिका है। (देखिये चित्र)

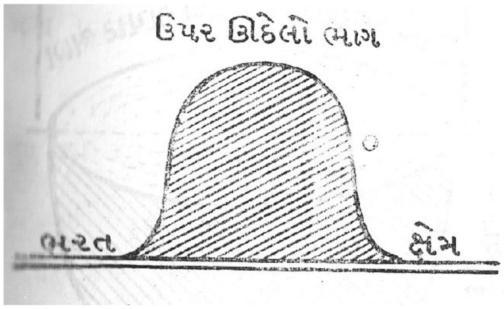

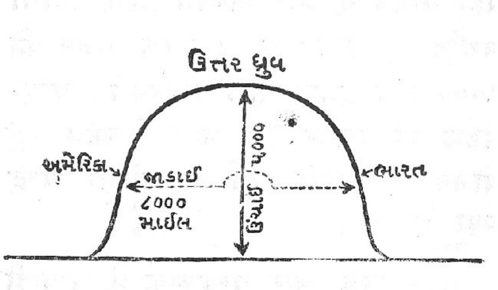

चौथे काल के आदि में भरतक्षेत्र का यह भाग उठा हुआ नहीं था, परंतु समतल चित्रा पृथ्वी थी; पश्चात् कालक्रम से भरतक्षेत्र के आर्यखंड की चित्रा भूमि के समतल भाग पर मिट्टी की परतों पर परतें चढ़ती गई, जिससे वह पृथ्वी बढ़ती गई और वह बढ़ता हुआ भूभाग लगभग उपरोक्त आकार का (जैसा चित्र में है) बन गया, अर्थात् वह भाग खंदकों–टीलोंवाली गोट समान हो गया। आजकल के वैज्ञानिक इस उठे हुए भाग के इर्द–गिर्द पूर्व से पश्चित की ओर चक्कर लगाते हैं; उत्तर से दक्षिण (अर्थात् ऊपर से नीचे) चक्कर नहीं लगाते; क्योंकि दक्षिणी ध्रुव का भाग खुला नहीं है वह भाग चित्रा पृथ्वी के समान हुआ हुआ है। (देखिये चित्र)

इस उठे हुए भाग पर समुद्र भी हैं, जिसका पानी लवण समुद्र जैसा है। उत्तर ध्रुव इस

उठी हुई पृथ्वी के ऊपर भाग को कहते हैं; दक्षिणी ध्रुव कोई क्षेत्र ही नहीं है, क्योंकि उठी हुई पृथ्वी को निचला भाग चित्रा पृथ्वी से जुड़ा हुआ है। अवकाशयान पृथ्वी के उठे हुए भाग की प्रदक्षिणा उत्तर से दक्षिण यानी ऊपर से नीचे नहीं कर सकता। यदि अवकाशयान उत्तर से दक्षिण की ओर परिक्रमा करे तो वह चित्रा पृथ्वी से टकराकर नष्ट हो जायेगा। आज तक किसी अवकाशयान ने वर्तमान पृथ्वी की ठीक उत्तर से दक्षिण परिक्रमा नहीं की है और न कर ही सकता है।

इस उठे हुए भाग पर दोनों सूर्यमंडलों (जम्बूद्वीप में दो सूर्य हैं) द्वारा दिन-रात की व्यवस्था होती है। चित्रा पृथ्वी के निचले मूल भाग की जो अनादि-अनंत व्यवस्था है वही व्यवस्था आज भी है; सिर्फ ऊपर उठे भाग में दिन-रात की व्यवस्था में अंतर पड़ गया है; और वह अंतर उसकी पाँच हजार मील की ऊँचाई के कारण है... यही कारण है कि जब भारत में दिन होता है तब अमेरिका में रात होती है। दिन-रात की व्यवस्था के संबंध में यहाँ विशेष प्रकाश नहीं डाल रहे हैं; क्योंकि यहाँ उसका प्रकरण नहीं है। रशियन तथा अमेरिकन अवकाश यात्रियों ने पृथ्वी के इसी उठे हुए भाग की परिक्रमा पूर्व से पश्चिम की ओर की है उत्तर से दक्षिण की ओर नहीं। बीच का भाग उठा हुआ है तत्संबंधी आगमप्रमाण जानने के लिये त्रिलोकप्रज्ञप्ति के चौथे अधिकार की गाथा १५५० से १५६० के बीच देखो।

ज्योतिष-विमानों का आकार अधगोल है; उसमें सूर्यमंडल का व्यास ४८/९१ महा योजन है और विष्कंभ उससे आधा अर्थात् २४/९१ योजन है। इस एक योजन को ५०००-पाँच हजार मील का समझें। चंद्रमंडल का व्यास ५६/९१ और विष्कंभ २४/९१ योजन है (यानी सूर्य की अपेक्षा चंद्र बड़ा है।)

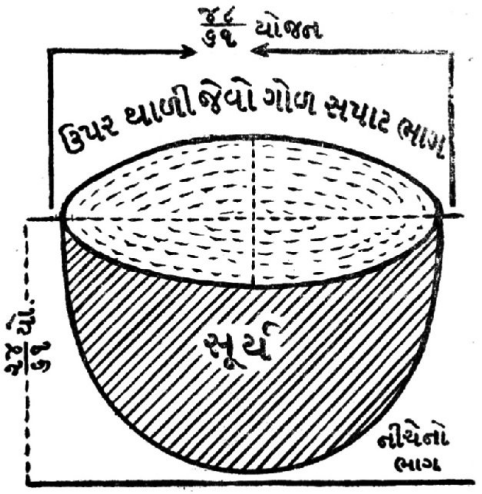

[सूर्य और चंद्रलोक में आबादी है अवश्य, परंतु मनुष्यों की नहीं, देवों की। वहाँ सुंदर महल बाग-बगीचे और जिनमंदिर भी हैं तथा वहाँ देवगण जिनेन्द्र भगवान की पूजा-भक्ति भी करते हैं।]

षट्खंडागमरूप अमृत का फल

सर्वज्ञ-परंपरा से चले आ रहे षट्खंडागम की प्रामाणिकता बतलाकर, तथा उस जिनवाणीरूपी अमृत के अभ्यास का फल मोक्ष बतलाकर आचार्यदेव ने मोक्षाभिलाषी भव्य जीवों को उसके अभ्यास का आग्रह किया है। इस संबंध में पुस्तक ९, पृष्ठ १३२-१३३ में श्री वीरसेन स्वामी वीर जिनेन्द्र के मोक्षगमन के पश्चात् लोहाचार्य तक की परंपरा बतलाकर फिर कहते हैं कि—लोहाचार्य का स्वर्गगमन होने पर आचारांगरूपी सूर्य अस्त हो गया। इसप्रकार भरतक्षेत्र में बारहअंगरूप सूर्य का अस्त हो जाने से शेष समस्त आचार्य अंग-पूर्व के एकदेश भूत 'पेज्जदोस' और 'महाकम्मपयडि पाहुड' आदि के धारक हुए। इसप्रकार प्रमाणीभूत महर्षिरूप प्रणाली द्वारा आकर महाकर्म प्रकृति प्राभृतरूपी अमृत जल प्रवाह धरसेन भट्टारक को प्राप्त हुआ।

उन्होंने भी गिरिनगर की चंद्रगुफा में संपूर्ण महाकर्मप्रकृतिप्राभृत भूतबलि और पुष्पदंत मुनियों को अर्पित किया। पश्चात् श्रुतरूपी सरिता के प्रवाह का व्युच्छेद हो जाने के भय से भूतबलि भट्टारक ने भव्यजनों के अनुग्रह हेतु महाकर्मप्रकृति प्राभृत का उपसंहार करके छह खंड (षट्खंडागम) की रचना की। इसलिये त्रिकाल विषयक समस्त पदार्थों को विषय करनेवाले प्रत्यक्ष अनंत केवलज्ञान द्वारा प्रभावित होने से और प्रमाणीभूत आचार्यों की परम्परा से आने के कारण, दृष्ट या इष्ट विरोध का अभाव होने से यह ग्रंथ प्रमाणभूत है।

(इसप्रकार षट्खंडागम की प्रामाणिकता सिद्ध करके उसके अभ्यास का आग्रह करते हुए श्री वीरसेन स्वामी कहते हैं कि—)

—इसकारण मोक्षाभिलाषी भव्य जीवों को इसका अभ्यास करना चाहिये। परंतु 'यह ग्रंथ तो अल्प है (बारह अंग का थोड़ा सा ही भाग है) इसलिये वह मोक्षरूप कार्य को उत्पन्न करने में असमर्थ है'—ऐसी शंका नहीं करना चाहिये; क्योंकि अमृत के सौ घड़े पीने का जो फल है, वह एक अंजलि प्रमाण अमृत पीने में भी प्राप्त होता है।

जिनवाणीरूप गंगा के प्रवाह को अच्छिन्न रखनेवाली

सौराष्ट्र की श्रुतवत्सल संत-त्रिपुटी

(षट्खंडागम की रचना का पावन इतिहास)

जिनवाणी के प्रवाह में से अंगपूर्वक एकदेश के ज्ञाता श्री धरसेनाचार्य षट्खंडागम के विषय के ज्ञाता थे। वे सौराष्ट्र देश के गिरिनगर की चंद्र गुफा में ध्यान करते थे। नंदी संघ की पट्टावलि के अनुसार वे महावीर स्वामी की ३१ वीं पीढ़ी में (वीर निर्वाण के पश्चात् करीब ६४३ वर्ष में) हुए। वे अंगपूर्वों के एकदेशज्ञाता... महान विद्वान एवं श्रुतवत्सल थे। वीर प्रभु की परंपरा से चला आ रहा यह श्रुतज्ञान का प्रवाह अच्छिन्न रहे-ऐसी श्रुत भक्ति से प्रेरित होकर महिमानगरी के मुनि-सम्मेलन में उन्होंने एक पत्र भेजा।

महिमा नगरी के यति-सम्मेलन में श्री धरसेनाचार्य का पत्र पहुँचा और उनके श्रुतरक्षा संबंधी अभिप्राय को जानकर संघ ने दो मुनियों को चुनकर गिरिनगर भेजा; वे मुनि विद्या ग्रहण करने में तथा उसका स्मरण रखने में समर्थ थे; अत्यंत विनयी तथा शीलवान थे; उनके देश-कुल और जाति शुद्ध थे, और वे समस्त कलाओं में पारंगत थे। जब वे दो मुनि गिरिनगर की ओर आ रहे थे, तब यहाँ श्री धरसेनाचार्य ने ऐसा शुभ स्वप्न देखा कि दो श्वेत वृषभ आकर उन्हें विनयपूर्वक वंदना कर रहे हैं... उस स्वप्न पर से उन्होंने जाना कि आनेवाले दोनों मुनि

विनयवान एवं धर्मधुरा को वहन करने में समर्थ हैं... जिससे 'जयउ सुयदेवदा'—(श्रुत देवता जयवंत हो) ऐसे आशीर्वचन उनके मुख से निकले।

दूसरे दिन दोनों मुनिवर आ पहुँचे और विनयपूर्वक उनके चरणों में वंदना की। दो दिन पश्चात् श्री धरसेनाचार्य ने उनकी परीक्षा की। एक को अधिक अक्षरोंवाला और दूसरे को हीन अक्षरोंवाला विद्यामंत्र देकर, दो उपवास सहित उसे साधने को कहा। विद्याएँ सिद्ध हो गई, तब एक देवी बड़े दाँतोंवाली और दूसरी कानी-ऐसी कुरूप देवियाँ दिखायी दीं। उन्हें देखकर चतुर मुनियों ने जान लिया कि अपने मंत्रों में कोई त्रुटि है; क्योंकि देव विकृतांग नहीं होते। उन्होंने विचारपूर्व मंत्र में हीनाधिक अक्षरों को सुधारकर पुनः विद्या की साधना की, जिससे दोनों देवियाँ अपने प्राकृतिक सौम्यरूप में प्रगट हुई। उनकी इस कुशलता से गुरु ने जान लिया कि सिद्धांत पढ़ाने के लिये वे योग्य पात्र हैं। फिर तो उन्होंने उन मुनियों को सिद्धांत अध्ययन कराया। वह श्रुताभ्यास अषाढ़-शुक्ला एकादशी के दिन समाप्त हुआ और उस समय भूत जाति के देवों ने पुष्पहार द्वारा शंख आदि वाद्यों के मंगल नाद सहित एक मुनि की महा पूजा की, इसलिये आचार्य ने उनका नाम भूतबलि रखा, तथा दूसरे मुनि की दंतपंक्ति अस्त-व्यस्त थी वह देवों ने एक-सी कर दी जिससे उनका नाम पुष्पदन्त रखा। यही दोनों आचार्य षट्खंडागम के रचयिता हुए।

इसप्रकार श्री धरसेनस्वामी, पुष्पदन्तस्वामी और भूतबलि स्वामी—इस श्रुतवत्सल संतों की त्रिपुटी ने एकसाथ सौराष्ट्र की धारा को पावन करके श्रुत की सरिता प्रवाहित की।

'षट्खंडागम' में सत्यप्ररूपणा अधिकार के कर्ता श्री पुष्पदंतस्वामी हैं और शेष समस्त ग्रंथ के कर्ता श्री भूतबलिस्वामी हैं। भूतबलि आचार्य ने षट्खंडागम की रचना पुस्तकारूढ़ करके तथा उसे ज्ञान का उपकरण मानकर, ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन चतुर्विध संघ के साथ अंकलेश्वर में उस श्रुत की महा पूजा की, इसलिये उस दिवस की प्रसिद्धि जैनों में 'श्रुत पंचमी' के रूप में चली आ रही है और उस दिन श्रुत पूजा की जाती है।

इस षट्खंडागम-सिद्धांत पर महान विस्तृत धवला टीका के रचयिता श्री वीरसेनाचार्य की महिमा बतलाते हुए जिनसेन स्वामी ने कहा है कि—'षट्खंडागम में उनकी वाणी अस्खलितरूप से प्रवर्तती थी। उनकी सर्वार्थगामिनी नैसर्गिक प्रज्ञा को देखकर किसी भी बुद्धिमान को सर्वज्ञ की सत्ता में शंका नहीं रही थी।' ['पारदृश्वाधिविश्वानां साक्षादिव स केवली'] वीरसेनस्वामी की धवला-टीका ने षट्खंडागम सूत्रों को चमका दिया।

विविध वचनामृत

(लेखांक : २०)

(२५०) पूर्णता के मार्ग का प्रारम्भ

अपने में पूर्णता की प्रतीति के बिना पूर्णता की प्राप्ति नहीं हो सकती। पूर्णता अर्थात् मुक्ति; उस पूर्णता के मार्ग का प्रारम्भ पूर्ण स्वभाव की प्रतीति द्वारा होता है।

(२५१) जैनमार्ग अर्थात् वीतरागभाव

जैनमार्ग वीतरागभावस्वरूप है।

वीतरागता, वह मोक्षमार्ग है।

वीतरागभाव में राग को स्थान नहीं है; फिर भले ही वह भाव वीतराग के प्रति हो।

राग, वह राग है, दोष है; वीतरागता, वह वीतरागता है, निर्दोष है।

अतः राग, वह वीतरागता नहीं है; वीतरागता, वह राग नहीं है।

राग को सच्चा मार्ग माने, वह वीतरागी धर्म की साधना नहीं कर सकता।

(२५२) आत्मा का चमत्कार

आत्मा 'ज्ञायक' है।

ज्ञायकता—स्व-पर प्रकाशक शक्ति, वह चैतन्य का चमत्कार है।

ज्ञान, वह आत्मा का असाधारण गुण है।

आत्मा की ज्ञानशक्ति अपने से ही है।

ज्ञेयों के आधार से ज्ञान नहीं है, इन्द्रियों से ज्ञान नहीं होता।

विकल्पों से ज्ञान नहीं होता, ज्ञान ज्ञान से ही है।

आत्मा के स्व-आधार से ही ज्ञान है।

ऐसे ज्ञानस्वरूप की उपासना ही मोक्ष का मार्ग है।

(२५३) सच्चा ज्ञान और आत्मप्रेम

ग्यारह अंग और नौ पूर्व जानने पर भी अज्ञानी जिस आत्मस्वभाव को नहीं जान सका, उसे ज्ञानी ने तीव्र आत्मप्रतीति के बल से स्वानुभूति द्वारा एक क्षण में जान लिया... तो वह

आत्मप्रतीति और वह स्वानुभूति कैसी होगी !... ग्यारह अंग के ज्ञान ने जो काम नहीं किया, वह काम उसने एकक्षण में कर लिया।

(२५४) शरणभूत कौन ? भय किसका ?

प्रश्न—जीव को शरणभूत कौन ?

उत्तर—शुद्धोपयोग जीव को शरणभूत है ?

प्रश्न—जीव को भय किसका ?

उत्तर—परभाव का जीव को भय है।

(२५५) पुण्य, पाप और जड़

पैसे से धर्म नहीं है; पैसे से पुण्य नहीं है; पैसे से पाप नहीं है।

शरीर से धर्म नहीं है; शरीर से पुण्य नहीं है; शरीर से पाप नहीं है।

शुद्धभाव से धर्म है; शुभभाव से पुण्य है; अशुभभाव से पाप है।

पैसा, शरीरादि तो जड़ हैं।

(२५६) स्वानुभूति के लिये उपयोगी ज्ञान

बाह्य पदार्थों का ज्ञान आत्मा की स्वानुभूति के लिये कार्यकारी नहीं हो सकता।

आत्मा से प्रेम लगाकर ज्ञान आत्मोन्मुख हो, तभी स्वानुभूति होती है।

(२५७) आत्मा स्वाधीनता से सधता है

मेरे स्वभावगुण दूसरा कोई मुझे दे, अथवा उन्हें प्रगट करने में दूसरा कोई सहायक हो, या उनकी प्राप्ति में कोई दूसरा विघ्न करे—ऐसी मान्यता, वह पराधीनता है; पराधीनता से आत्मा को कभी नहीं साधा जा सकता।

मेरे स्वभावगुण मुझमें ही हैं और उन्हें प्रगट करने में मैं स्वतंत्र हूँ—ऐसी स्वाधीन बुद्धि द्वारा आत्मा को साधा जा सकता है।

(२५८) संसार आताप से बचने के लिये चैतन्य-समुद्र में डुबकी लगा

अंतर में चैतन्यरस से छलकता हुआ केवलज्ञानसमुद्र आनंद की हिलोरें मार रहा है; उसमें आत्मप्रीति द्वारा डुबकी लगा तो संसार के सब आताप शांत हो जायेंगे और तुझे मोक्ष की परमशीतल शांति का अनुभव होगा।

(२५९) जड़, पुण्य और ज्ञान

✷ पुण्य से धर्म नहीं होता।

✷ आत्मा जड़ के कार्य नहीं कर सकता।

✷ जड़ से भिन्न और पुण्य से पार ऐसा जो ज्ञान, वह आत्मा का सच्चा कार्य है और उसमें आत्मा का धर्म है।

अरे जीव! थोड़ा सा भी दुःख तुझे असह्य लगता है, तब फिर अनन्त तीव्र दुःखों के कारणरूप मिथ्यात्व का सेवन तू क्यों कर रहा है यदि घोर संसार दुःखों से छूटना चाहता है तो मिथ्यात्व का सेवन छोड़, और वीतराग सर्वज्ञदेव का अपने आत्मस्वरूप की पहचान कर... जिससे परम मोक्ष सुख की तुझे प्राप्ति होगी।

तत्त्वचर्चा

[लेखांक : १२]

तत्त्वरसिक जिज्ञासुओं को प्रिय 'दस प्रश्न और उनके उत्तर' का यह विभाग पूज्य स्वामीजी के समक्ष हुई तत्त्वचर्चा से तथा शास्त्रों पर से तैयार किया जाता है। —सम्पादक

(११०) एकरूप अभेद आत्मवस्तु निरपेक्ष है, और उसकी रुचि करना, वह भी पर से तथा राग से निरपेक्ष है।

(१११) अपने एकरूप परम स्वभाव का लक्ष एवं रुचि करना ही सार है, बाकी सब तो जानने जैसा... और परोन्मुखता है–असार है।

(११२) अपनी एकरूप वस्तु का लक्ष करने से आनंद प्रगट होता है। यह द्रव्य और यह गुण, अथवा यह द्रव्य और यह पर्याय – ऐसे भेद जहाँ नहीं हैं, द्रव्य–गुण–पर्याय से अभेद

वस्तु की अनुभूति है; वहाँ अतीन्द्रिय आनंद भी साथ ही है। भेद के लक्ष में वह आनंद प्रगट नहीं होता।

(११३) सर्वज्ञस्वभाव से परिपूर्ण जो अखंड आत्मस्वभाव, उसकी जिसे रुचि हुई, उसे केवलज्ञान तो होना ही है।

(११४) जहाँ स्वभाव की रुचि हुई, वहाँ परिणति उस ओर परिणमित होने लगी... अर्थात् सर्वज्ञता का साधकपना प्रारम्भ हुआ और अल्प काल में सर्वज्ञता होगी।

(११५) विकल्परहित अभेद वस्तु दृष्टि में आने पर ही श्रद्धा सच्ची होती है। विकल्प के ऊपर दृष्टि (रुचि) हो तो शुद्धात्मा की श्रद्धा सच्ची नहीं होती।

(११६) वीतराग मार्ग का यह अबाधित सिद्धांत है कि–कल्याण और मोक्षमार्ग आत्मस्वभाव के आश्रय से ही होता है, अन्य किसी के आश्रय से नहीं होता।

(११७) स्वानुभूति के जोर से साधक कहता है कि हे सिद्धपरमात्मा! जैसा आपका आनंद है, वैसा ही मेरा है; जैसा आपका स्वरूप है, वैसा ही मेरा है; आपके और मेरे स्वभावसामर्थ्य में भी कोई अंतर नहीं है।—ऐसे निजस्वभाव की प्रतीति के बल से जैसा परमात्मस्वरूप आपने प्रगट किया, वैसा ही मैं करनेवाला हूँ। तथा जो जीव ऐसे परमात्मस्वरूप की प्रीति एवं प्रतीति करेंगे, वे भी अवश्य परमात्मा बन जायेंगे... ऐसा नियम है।

(११८) हे भाई! आत्महित साधने का यह उत्तम अवसर है; इसलिये सावधान होकर आत्महित में तत्पर हो। (१) वृद्धावस्था आने से पूर्व, (२) इन्द्रियाँ शिथिल होने से पहले तथा (३) रोगादि प्रतिकूलताएँ आने से पहले आत्मकल्याण कर लेना चाहिये।

(११९) जिसे आत्मा के ज्ञानस्वभाव का निर्णय हुआ, उसे मोक्षतत्त्व का निर्णय हुआ और उसे राग की तथा पर की पृथक्ता की प्रतीति हुई; इसलिये वह उसका कर्ता नहीं रहा; राग में से और पर में से उसका कर्तृत्व उड़ गया, ज्ञानभावरूप परिणमन रहा; इसलिये उसमें मोक्षमार्ग का वीतरागी पुरुषार्थ आ गया।—इसप्रकार ज्ञानस्वभाव के निर्णय में मोक्षमार्ग आता है और ज्ञानस्वभाव के बिना कभी मोक्षमार्ग नहीं होता। इसलिये सर्व उद्यम से बारम्बार अभ्यास द्वारा ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय करना चाहिये... अनुभव करना चाहिये। (स्वोन्मुख होकर स्वानुभव सहित निर्णय ही सम्यक् निर्णय है।)

परम शांतिदायिनी

अध्यात्म-भावना

[आत्मधर्म की सरल लेखमाला]

लेखांक ३८] [अंक २७७ के आगे

भगवान श्री पूज्यपादस्वामीरचित 'समाधिशतक' पर पूज्य गुरुदेव के अध्यात्मभावना भरपूर वैराग्यप्रेरक प्रवचनों का सार।

ज्ञानी तो जगत से भिन्न अपने आत्मस्वरूप को ऐसा जानता है कि जगत के पदार्थ उसे शून्य भासित होते हैं, मानो वे चेतना से शून्य हों, क्योंकि अपनी चेतना-शक्ति उनमें कहीं नहीं है। किंतु अज्ञानी को ऐसा भिन्न आत्मा का भान नहीं है, वह तो भ्रांति से देहादिक को ही आत्मा मानता है। यथार्थ आत्मतत्त्व को नहीं जाननेवाला वह बहिरात्मा, आत्मा को कैसा मान रहा है, वह अब कहते हैं—

प्रविशद्‌गलतां व्यूहे देहेऽणूनां समाकृतौ।
स्थितिं भ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मानमबुद्धयः॥६९॥

अज्ञानी अपनी नित्यता को भूलकर, भ्रांति से इस क्षणिक संयोगी शरीर को नित्य-स्थिर मान रहा है, और 'वही मैं हूँ' ऐसा अपने को देहरूप से मान रहा है। शरीर में प्रतिसमय अनंत परमाणु आते-जाते हैं; स्थूलरूप से कुछ काल तक शरीर ज्यों का त्यों दिखायी देता है, वहाँ अज्ञानी उसे स्थिर मान रहा है; और देह के साथ एक क्षेत्रस्थ रहने से उस देहरूप ही अपना अनुभव कर रहा है। देह के साथ एक आकाशक्षेत्र में रहना, वह कहीं देह के साथ एकत्वबुद्धि का कारण नहीं है; ज्ञानी को और केवली भगवान को भी संसारदशा में देह के साथ एकक्षेत्रावगाहत्व है, किंतु वे भेदज्ञान के द्वारा अपने आत्मा का देह से अत्यंत भिन्न अनुभव करते हैं। अज्ञानी को वास्तव में अपनी भिन्न सत्ता की प्रतीति नहीं है, इसलिये भ्रांति द्वारा वह शरीर को ही आत्मारूप से मानता है; शरीर की क्रियाओं को अपनी ही क्रिया मानता है; उसे समझाते हैं कि—भाई! तू तो चैतन्यबिम्ब असंयोगी अरूपी वस्तु है, देह तो संयोगी, रूपी और जड़ है; उसके साथ एकक्षेत्र में रहने से कहीं तू उसरूप-जड़रूप नहीं हुआ, तेरा स्वरूप तो

उससे भिन्न ही है। अनंत देह बदल गये, फिर भी तू तो अकेला ही रहा है। कोई-कोई पूर्वभवों का ज्ञान रखनेवाले जीव देखने में आते हैं, वे ही देह से आत्मा की भिन्नता को प्रगट करते हैं। पूर्व के शरीर आदि संयोग एकदम बदल गये, वे शरीरादि आज तो नहीं हैं, तथापि 'उस देह में रहनेवाला मैं वर्तमान में यह रहा'—इसप्रकार देह से भिन्न अस्तित्व की प्रतीति हो सकती है; यदि शरीर ही आत्मा हो तो पूर्व के शरीर का नाश होते ही आत्मा का भी नाश हो जाना चाहिये था। किंतु आत्मा तो यह रहा—इसप्रकार शरीर से भिन्नत्व प्रत्यक्ष अनुभवगोचर होता है।

अरे! कहाँ चैतन्यस्वरूप आनंद से भरा हुआ आत्मा; कहाँ यह जड़-पुद्गल का पुतला! उसमें एकत्वबुद्धि तुझे शोभा नहीं देती। जिसप्रकार मुर्दे के साथ जीवित मनुष्य की सगाई नहीं होती, उसीप्रकार मृतक ऐसे इस शरीर के साथ जीवंत चैतन्यमूर्ति जीव की सगाई नहीं होती-एकत्व नहीं होता, दोनों की अत्यंत भिन्नता है। यह देह तो स्थूल इन्द्रियगम्य, नाशवान वस्तु है; तू तो अति सूक्ष्म, अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप, इंद्रियों से अगम्य, अविनाशी है। तू अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंद का धाम है—ऐसी अपनी अंतरंग वस्तु में दृष्टि तो कर।

लकड़ी और यह शरीर—दोनों एक ही जाति के हैं, लकड़ी तू नहीं है; उसीप्रकार शरीर भी तू नहीं है। लकड़ी और आत्मा भिन्न है; उसीप्रकार देह और आत्मा भी अत्यंत भिन्न है। ऐसे भिन्नत्व की प्रतीति बिना, जीव को समाधि-समाधान या शांति नहीं हो सकती। समाधि का मूल भेदज्ञान है। स्व-पर का भेदज्ञान करके स्व में स्थिर होने से समाधि होती है; उस समाधि में आनंद है, शांति है, वीतरागता है, अत: हे जीव! तू देह से भिन्न आत्मा को जानकर उसे ही भा। (गाथा-६९)

देह से भिन्न आत्मा को तू अपने चित्त में सदा धारण कर; देह के विशेषणों को आत्मा में न लगा।—ऐसा अब कहते हैं—

गौरः स्थूलः कृशो वाऽहम इत्यंगेनाविशेषयन।
आत्मानं धारयेन्नित्यं केवलज्ञप्तिविग्रहम् ॥७०॥

भाई, आत्मा तो केवलज्ञानशरीरी है; केवल ज्ञान ही उसका शरीर है; यह जड़ शरीर, वह कुछ आत्मा का नहीं है। अत: मैं गोरा-काला-मोटा-दुबला-पतला हूँ अथवा मैं मनुष्य हूँ, मैं देव या पशु इत्यादि शरीर के विशेषणों को आत्मा न मान। काला, सफेद, लाल आदि रंग या मोटा-पतला, यह विशेषण तो जड़ शरीर के हैं; इन विशेषणों के द्वारा जड़ लक्षित होता है,

आत्मा नहीं; अत: धर्म जीव उन विशेषणों से अपने आत्मा को विशेषित नहीं करता, उनसे सदा भिन्न ही नित्य केवलज्ञान ही जिसका शरीर है—ऐसे अपने आत्मा को सदा धारण करता है, चिन्तन करता है।

अहा, असंख्य प्रदेशी अवयववाला केवलज्ञान ही जिसका शरीर है, मात्र ज्ञान ही जिसका स्वरूप है—ऐसे आत्मा में काला-गोरा रंग कैसा! या मोटा-पतला शरीर कैसा! उसे एक क्षण भी तू अपने में चिंतन न कर; नित्य ज्ञानानंद से भरपूर भगवान तू है—ऐसे स्वरूप से तू अपने को धारण कर अर्थात् श्रद्धा में-ज्ञान में-अनुभव में ले।

जहाँ जहाँ ज्ञान, वहाँ वहाँ मैं;
जहाँ जहाँ आनंद, वहाँ वहाँ मैं;
परंतु जहाँ शरीर, वहाँ मैं—ऐसा नहीं है।

'केवल ज्ञप्तिस्वरूप मैं हूँ'—ऐसे अनुभव में विकार भी कहाँ आया? केवल ज्ञप्ति, अर्थात् अकेला वीतरागी ज्ञान; ऐसे शुद्ध आत्मस्वरूप में जहाँ विकार का भी अवकाश नहीं है, वहाँ शरीर कैसा?—ऐसे अशरीरी आत्मा का चिंतन, अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा होता है। ज्ञान के उपयोग को अंतरोन्मुख करके धर्मी जीव अपने को ऐसा (केवलज्ञानस्वरूप) अनुभव करता है। 'सर्व जीव हैं सिद्ध सम' और 'सिद्ध समान सदा पद मेरा'—ऐसी प्रतीति में शरीर के साथ एकत्वबुद्धि नहीं रह सकती; इसलिये शरीर संबंधी विषयों में सुखबुद्धि भी रहती ही नहीं। ऐसे भेदज्ञान द्वारा आत्मा को पहिचानना, वह मोक्ष का कारण है—यह बात अगली गाथा में कहेंगे।

[७०]

सर्व अर्थ कुशल, जंगमसरस्वति, श्रुतकेवलीकल्प

श्री अमृतचंद्र आचार्यदेव के विषय में नया प्रकाश

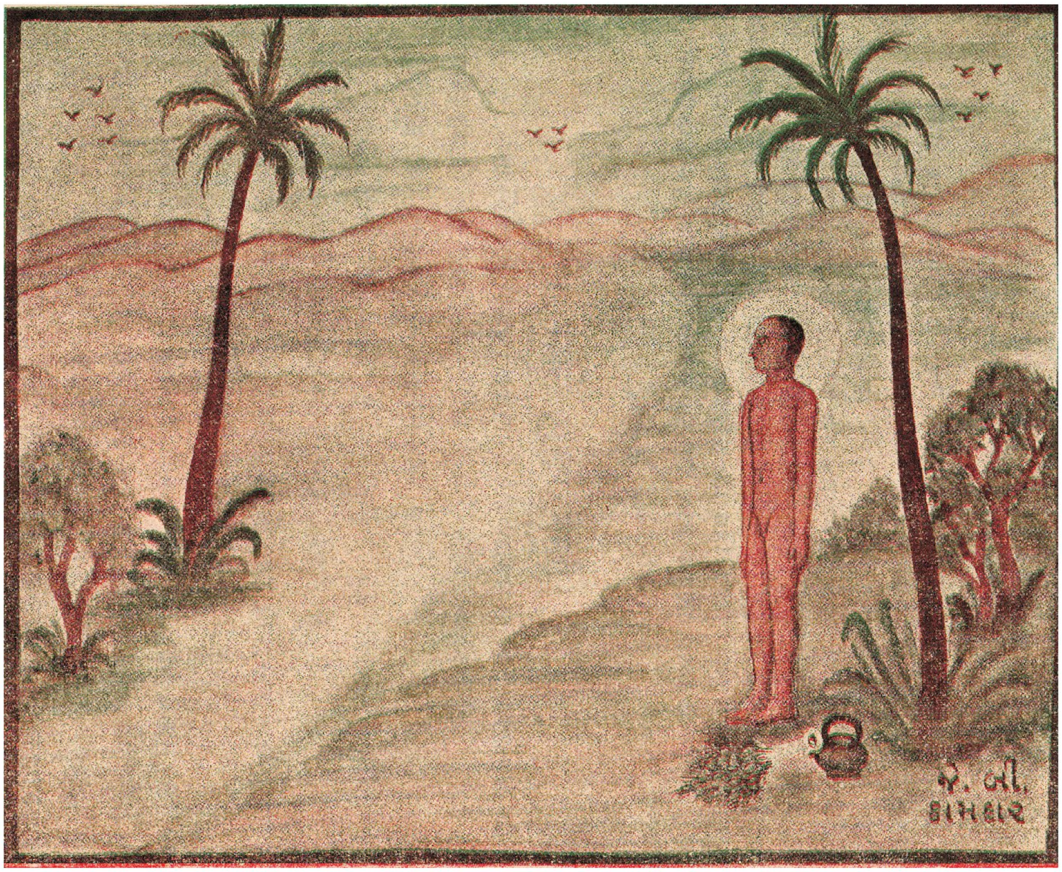

'महाराज कुमारपाल (गुजरात) के समय का अपभ्रंश काव्य' इस शीर्षकवाला एक लेख भावनगर (सौराष्ट्र) में स्व० श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई, बी.ए., एल.एल.बी. एडवोकेट द्वारा आत्मानंद जन्मशताब्दी स्मारक ग्रंथ में ३२ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था।

पज्जुन्न कहा—प्रद्युम्न चरित्र नामक अपभ्रंश भाषा में सुंदर काव्य है, वह श्री ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वति भवन (बम्बई) में है, जो स्व० नाथूराम 'प्रेमी' द्वारा लेखक (मो.द.) को मिला था। उसमें श्री अमृतचंद्राचार्य के संबंध में निम्न प्रकार विशेष प्रकाश की सामग्री है:—

रल्हण के पुत्र सिंह अथवा सिद्ध नामक कवि के द्वारा रचित प्रद्युम्न चारित्र की रचना है उसमें कवि सिद्ध ने यतिवर्य श्री अमृतचंद्र की 'अहो, अहो, परमेसर' संबोधन द्वारा स्तुति की है, उपरान्त निम्न प्रकार शब्दों में श्री अमृतचंद्रदेव का परिचय दिया है:—

''ता मलधारिदेव मुणिपुंगमु। णं पच्चक्खु धम्मु उपशमु दमु।
महउचंदु आसी सुप्रसिद्धउ। जो खम-दम-जम-णियम समिद्धउ।
तासु सीसु तव-तेज दिवायरु। वय-तव-णियम सील रयणायरु।
तक्कलहरि-झंकोलिय परमउ, वर-वायरण पवर पसरिय-पउ।
जासु भुवण दुरंतरू विंकिवि। ठिउ पच्छण्णु मयणु आसंकिवि।
अमियचंदु णामेण भड़ारउ। सो विहरंतु पत्तु बुह सारउ।
बंभणवाडउ णामे पट्टणु। अरिणरणाह-सेण-दलवट्टणु।
जो भुंजइ अरिणखयकालहो। रणधोरियहो सुयहो बल्लालहो।
जासु भिच्चु दुज्जण-मणसल्लणु। खत्तिउ गुहिलउत्तु जहिं भुल्लणु।
तहिं संपत्तु मुणीसरु जावहिं। भव्वुलोउ आणंदिउ तावहिं॥''

अर्थ—भावार्थ—तब मलधारीदेव पदवीवाले मुनिपुंगव माधवचंद्र सुप्रसिद्ध थे कि जो प्रत्यक्ष धर्म, उपशम और दम की मूर्तिरूप थे, क्षमा, दम, यम, नियम से समृद्ध थे, उनके शिष्य (मलधारीदेव माधवचंद्र मुनि पुंगव के शिष्य श्री अमृतचंद्र) तप तेज से सूर्य समान-व्रत, तप, नियम, शील के समुद्र समान और तर्करूपीलहरों से जिन्होंने परमत को डिगाया है, उत्तम व्याकरण से जिनके शब्द फैल गये थे, जिनके भुवन में (मार्ग में) मदन-कामदेव दूरंतर ठाडो रहकर (मृत्यु की) शंका सहित प्रच्छन्न रहता था अर्थात् आपके मार्ग में कामदेव आ नहीं सकता था, ऐसे अमृतचंद्र नामक भगवान (भट्टारक) और विद्वानों में श्रेष्ठ विहार करते-करते आ पहुँचे। (कहा ?)

नदी, सरोवर, नंदनवन से आच्छादित, जहाँ मठ विहार जिनमंदिर है, रम्य है ऐसा बांभणवाडा नामक पट्टन शहर है कि जो शत्रुराजा के समूह को नष्ट करनेवाले रणधीर का पुत्र वल्लाल भोक्ता है। उनका भृत्य-मांडलिक दुर्जनों के मन को शल्यरूप ऐसा गोहिलपुत्र (गोहिल वंशीय) क्षत्री नामक भूल्लण है। भूल्लण के राज्य बांभणवाडा में जब वो मुनिश्वर पधारे, तब भव्य लोग आनंद को प्राप्त हुए।

[धत्ता छंद में कवि कहते हैं कि 'निजगुण की प्रशंसा बिना किये ही जिन मुनि की लोगों के द्वारा दुगंछा होती नहीं है, उन्हें नमस्कार करके नय-विनय से समृद्ध ऐसे कवि सिद्ध ने, उन यतिवर्य श्री अमृतचंद्र का सत्कार किया।]

कवि-अहो अहो परमेश्वर ! बुधों में प्रधान ! तप-नियम-शील-संयम के निधान !....

(इत्यादि वर्णन है जिसमें कवि ने अपनी विशेषता और आत्मप्रशंसा की है जो यहाँ देना अप्रसंग है।)

श्री अमृतचंद्रजी के लिये विशेष में अंतिम प्रशस्ति में कवि सिद्ध ने यह बतलाया है कि:—

परवाइय वाया-हरुअ-छम्मु, सुयकेवलिजो पव्वरक्खु धम्मु।
सो जयउ महामुणि अमियचंदु, जो भव्वनिवहकइरवह चन्दु।
मलधारिदेव-पय-पोम-भसलु, जंगम सरसइ सव्वत्थ कुसलु।

अर्थ:—जो परवादीओं के वाद को हरने में क्षम-शक्तिवान् है और श्रुतकेवली समान है-श्रुतकेवली कथित धर्म की रक्षा में समर्थ है, जो भव्यों के समूहरूपी कमल के चन्द्रसमान है, जो मलधारिदेव के चरण-कमल के भ्रमररूप हैं, जो जंगम सरस्वती सम सर्व अर्थ में कुशल हैं, उन महामुनि श्री अमृतचंद्र की जय हो।

[श्री अमृतचंद्राचार्य के विषय में अधिक जानना हो तो देखो स्व० नाथूरामजी द्वारा लिखित जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ३०९ से ३१३] (ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन)

श्री अमृतचंद्रसूरिकृत एक अपूर्व ग्रंथ

प्रौढ़ साहित्य रसिक श्वेताम्बर मुनि श्री पुण्यविजयजी लिखते हैं कि—ताड़पत्र पर लिखा हुआ आचार्यश्री अमृतचंद्र सूरिकृत अपूर्व ग्रंथ देखा। अमृतचंद्राचार्य की इस कृति का उल्लेख किसी की प्रस्तावना में आज तक नहीं मिला है। अत: प्रतीत हुआ कि श्री अमृतचंद्राचार्य की यह कृति अज्ञात ही है। ग्रंथ का नाम है '**शक्ति मणि कोष अपर नाम लघुतत्त्व स्फोट**' इसमें पच्चीस-पच्चीस पद्यात्मक पच्चीस पच्चीसियाँ हैं अर्थात् पंचविंशति पंचविंशिकाएँ हैं। यह रचना अलंकारिक एवं प्रासादिक है, थोड़े ही समय में अहमदाबाद विद्यामंदिर की ओर से प्रकाशित की जायेगी। श्रावक और श्राविकाओं में श्री अमृतचंद्राचार्य के खास स्वाध्यायी जिज्ञासुगण बहुत हैं, इस वार्ता से उनको समाधान होगा। ग्रंथ यथाशीघ्र

प्रकाशित किया जायेगा और किसी जगह इस ग्रंथ की प्रति किसी को परिचित हो तो सूचना दीजिये।

[नोंध – श्री अमृतचंद्राचार्य कृत 'पुरुषार्थसिद्धि उपाय' नामक श्रावकाचार ग्रंथ है, उसके नाम के साथ अपरनाम 'जिनप्रवचन रहस्य कोष' लिखा है और इस अज्ञात कृति में 'अपरनाम लघुतत्त्व स्फोट' लिखा है, इससे जिज्ञासा तीव्र बनी रहती है कि यह ग्रंथ भी अमृतचंद्रसूरि दिगम्बर जैनाचार्य कृत हो।]

स्वाध्याय

सम्यक् स्वाध्याय तप तपों में वृद्धि करनेवाला है। इससे व्रतों के अतिचार नष्ट होते हैं। शुद्धचित्तवाले विद्वानों ने इस स्वाध्याय के अनेक भेद कहे हैं।

स्वाध्याय तप अंतरंग तप में है, उनमें बाह्य प्रवर्तन उसे तो बाह्य तप–व्रत ही जानना जैसे अनशनादि बाह्य क्रिया हैं, उसीप्रकार यह भी बाह्य किया हैं; इसलिये प्रायश्चित्तादि बाह्यसाधन अंतरंग तप नहीं हैं। ऐसा बाह्य प्रवर्तन होने पर जो अंतरंग परिणामों की शुद्धता हो, उसका नाम अंतरंग तप जानना।

यहाँ भी इतना विशेष है कि बहुत शुद्धता होने पर शुद्धोपयोगरूप परिणति होती है, वहाँ तो निर्जरा ही है, बंध नहीं होता। और अल्प शुद्धता होने पर शुभोपयोग का भी अंश रहता हैं; इसलिये जितनी शुद्धता हुई, उससे तो निर्जरा है और जितना शुभभाव है, उससे बंध है। ऐसा मिश्रभाव युगपत् होता है।

(मोक्षमार्गप्रकाशक, टो. स्मारक ग्रंथमाला, पृष्ठ २३२)

वीतरागी संत कहते हैं कि-हे मोक्षार्थी! मोक्ष के लिये अपने शुद्ध-बुद्ध आत्मा को ध्या!

(योगीन्दुदेव आचार्यकृत योगसार-प्रवचन में से)

[सांसारिक भावों से जो ऊब गये हैं, थक गये हैं, चारों गति को दुःख जानकर अतीन्द्रिय आत्मा के परमानंद का अनुभव करने आये हैं—ऐसे मोक्षार्थी जीवों को क्या करना ? वह यहाँ बतलाया है; और सरल शैली से मार्ग दर्शाकर शुद्धात्मा के ध्यान में उत्साहित किया है ।]

आत्मा के पूर्ण आनंद का लाभ को यदि तू चाहता है तो हे जीव! निरंतर अपने शुद्ध आत्मा को भा, ऐसा कहते हैं—

सुद्ध सचेयणु बुद्धु जिण केवल णाणसहाउ।
सो अप्पा अणुदिणु मुणहु जइ चाहहु शिवलाहु॥२६॥
शुद्ध सचेतन बुद्ध जिन केवलज्ञान स्वभाव,
वह आत्मा जानों सदा जो चाहों शिवलाभ॥२६॥

हे मोक्षाभिलाषी ! तुझे प्रतिदिन करने योग्य काम यह है कि शुद्ध चैतन्यस्वरूप परिपूर्ण आनंदसागर ऐसे निजात्मा को जानकर उसे अनुभव में ले। अंतर में बारंबार उपयोग का प्रयोग करके तू शुद्धात्मा के सन्मुख हो, और ज्ञानचेतना को आनंदसहित संवेदन में ले। इसके सिवा दूसरे भावों की भावना न कर।

तू तो नित्य सचेतन जागृतस्वरूप है; उसमें राग का कर्तृत्व या राग का वेदन नहीं आता। राग का कर्ता-भोक्ता होना तो संसार है; यहाँ तो जो संसार से भयभीत है, सर्व विभावरूप संसारी भावों से जो थक गया है और आत्मा के परमानंद का अनुभव करने आया है-ऐसे जीव की बात है। ऐसे जीव को क्या करना ? कि भेदज्ञान द्वारा आत्मा ध्यान करना।

कैसे आत्मा का ध्यान करना ?

—शुद्ध अर्थात् परभावों से रहित, और ज्ञानदर्शन स्वभाव से पूर्ण—ऐसे आत्मा का ध्यान करना। आत्मा बुद्ध है अर्थात् चैतन्यस्वरूप को बोधे-जाने, वह सच्चा बुद्ध; सत्य बुद्ध तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसमें तन्मय होकर बोधन करे, उसे बुद्ध कहा जाता है। यह भगवान

आत्मा बुद्ध-बोधस्वरूप ज्ञानस्वरूप है, राग को करे या वेदे, ऐसा उसका स्वरूप नहीं है।— ऐसे शुद्ध बुद्ध आत्मस्वरूप को स्वोन्मुख होकर हे मोक्षार्थी! तू जान। अंतर में अचलतत्त्व को स्थिर होकर जान; विकल्प द्वारा यह तत्त्व ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। अत: बोधस्वरूप होकर बुद्धतत्त्व को तू जान। ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञान द्वारा ही ज्ञात होता है—राग द्वारा नहीं। क्योंकि राग वह बुद्धतत्त्व-ज्ञानचेतना का अंश नहीं है; बुद्धस्वरूप आत्मा में रागांश-विकल्प का प्रवेश ही कहाँ है ? ज्ञानी ने अंतर में ऐसे तत्त्व का अनुभव किया। मैंने यह तत्त्व स्वानुभव से जाना, वह मैं दूसरों से कह दूँ—ऐसी वृत्ति के उत्थान को शुद्ध-बुद्धतत्त्व में स्थान नहीं है; अन्यथा तो सिद्धपरमात्मा को भी ऐसी वृत्ति का उत्थान जागृत होना चाहिये।

शुद्ध, बुद्ध, जिन, सिद्ध ऐसे भाववाला अपना चेतनतत्त्व है। उस चेतनतत्त्व की अधिकता राग द्वारा, वाणी द्वारा या अन्य जानकारी द्वारा नहीं है। संसार विजयी-परभावों को नष्ट करनेवाला ऐसा निज आत्मा है; उसे निर्विकल्प ध्यान में ध्येय बनाना, स्वोन्मुख ज्ञान में ज्ञेय करना-वह शिवमार्ग है, वह परम आनंद का पंथ है।

दूसरों का कुछ कर सकते नहीं, न ऐसी वृत्ति भगवान आत्मा में है; अंतर में विकल्प की उत्पत्ति में आस्रवतत्त्व है, आत्मतत्त्व नहीं है; अपूर्णता वह भी वास्तव में आत्मा नहीं है। आत्मा तो सदा पूर्ण सचेतन, अकेला ज्ञानस्वभावी शुद्ध-बुद्ध है, उसमें अपूर्णता कैसी ? और अशुद्धता कैसी ? ऐसे आत्मा को लक्षगत करके हे जीव! तू सदा उसकी प्रीति कर, स्वोन्मुख होकर उसका मनन कर, बीच में किसी दूसरे की प्रीति एक क्षण भी न होने दे। यही मोक्ष का हेतु है, और दूसरी सब विकल्पों की कथा है। अंतर्मुखज्ञानधारा में मोक्षमार्ग का समावेश होता है। बीच में विकल्प की धारा में आये, उसकी अनुमोदना नहीं करना। विकल्प को मोक्षमार्ग में बाधक ही समझना, साधक किंचित् भी न मानना।

शुद्ध-ज्ञानस्वरूप आत्मा, कि जिसमें अंतर्मुख होने से विभावों को जीतना हो ही जाता है—ऐसा जिन, परमार्थ से तू ही है, अपने ऐसे स्वरूप को जानकर पुन:-पुन: उसकी भावना कर।—ऐसा करने से तुझे मोक्ष के परम सुख का अनुभव होगा। अत: यही मोक्षार्थी को निरंतर करनेयोग्य कर्तव्य है; क्योंकि—

शुद्धात्मा की भावना के द्वारा मोक्षमार्ग होता है। और पर की भावना से संसार होता है। —अत: हे जीव! तुझे जहाँ रुचिकर लगे, वहाँ जा। मोक्ष की चाहना हो तो शुद्धात्मा की भावना कर।—हमने तो मार्ग बताया, किंतु उस मार्ग पर चलना, यह तेरे अधिकार की बात है। दो मार्ग

हैं—एक मोक्ष का दूसरा संसार का; मोक्ष का मार्ग अंतर्मुख स्वभाव की भावना में है; उसके सिवा जितनी बाह्य वृत्ति और विकल्प है, वह संसार का मार्ग है। अब तुझे जो रुचे, उस मार्ग पर जा। वाणी में, शरीर में, विकल्प में तेरा मोक्षमार्ग नहीं है, किंतु अपने शुद्ध-बुद्ध जिनस्वभावी आत्मा में ही तेरा मोक्षमार्ग है। मोक्ष के लिये अपने स्वभाव के समीप जा। विकल्पों से दूर हो, और शुद्धस्वरूप के समीप होकर निर्विकल्प स्वरूप द्वारा आत्मा को ध्या।

मोक्षार्थी को किसी भी रागांश की रुचि या भावना नहीं होती; दूसरों का हित करने के लिये भव करने की भावना उसे नहीं होती। पराश्रितभाव जिसे रुचिकर है, उसे संसार की भावना हैं, मोक्ष की सच्ची अभिलाषा नहीं है। मोक्ष की सच्ची अभिलाषा हो, उसे शुभाशुभ राग-बंधभाव की भावना नहीं होती, उसे तो रात-दिन निरंतर अपने चैतन्यस्वभावी शुद्ध-बुद्ध आत्मा की ही एक भावना है, उसी का प्रेम और उसी में बारंबार सन्मुखता वर्तती है। मोक्षार्थी जीव का यही कर्तव्य है।—इसप्रकार बारंबार संतों का उपदेश है।

प्रौढ़-जैन शिक्षण शिविर

सोनगढ़ में हर साल की तरह इस वर्ष भी श्रावण सुदी पंचमी मंगलवार तारीख ३०-७-६८ से जैनधर्म की शिक्षा के कक्षावार वर्ग आरंभ होंगे और २० दिन तक अर्थात् भाद्र वद ९ रविवार तारीख १८-८-६८ तक चलेगा। उत्तम कक्षा में जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला और जैन तत्त्वमीमांसा ऊपर अभ्यास चलेगा।—तो वह ग्रंथ जिनके पास हो अवश्य अपने साथ लेते आना जिस मंडल में जैनतत्त्वमीमांसा ग्रंथ ज्यादा हो-वहाँ से भी लेते आना।

[सूचना-यह शिक्षण शिविर केवल भाईयों के लिये है। कक्षा में महिलायें नहीं बैठ सकती।]

दस लक्षणी पर्युषण पर्व

पर्वराज-दसलक्षण-भाद्र सुद ४ मंगलवार तारीख २७-८-६८ से शुरु होंगे और भाद्र सुद १४, गुरुवार तारीख ५-९-६८ को पूर्ण होंगे। (बीच में एक तिथि कम होने से चतुर्थी से लिया गया है।)

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—कर्मोदय के अनुसार ही डिग्री टू डिग्री विकार करना ही पड़े या होगा ही—ऐसी मान्यता में कौन-कौन तत्त्व की भूल है ?

उत्तर—मुख्यतया जीवतत्त्व की भूल है।

हेतु—जीव की उपादान परिणति स्वतंत्र नहीं रह सकती। इसलिये ऐसी मान्यता में भवभ्रमण की एक भी गति नहीं मिटेगी, तो फिर धर्म का प्रारंभ होकर मोक्ष कहाँ से होगा ? अत: ऐसी मान्यता में सभी तत्त्वों की भूल है, पराधीन मानने की भावना भी स्वयं स्वाधित रहकर करता है, पराधीन परिणमन माननेवालों को अपना भाव सुधारने का अवसर ही नहीं रहता।

प्रश्न—शरीर को चेतन मानकर शरीरादि की बाह्य क्रिया से संवर-निर्जरारूप धर्म मानने में कौन से तत्त्व की भूल है ?

उत्तर—अजीवतत्त्व की भूल है।

प्रश्न—शुभभाव में संवर-निर्जरा मानने में किस तत्त्व की भूल है ?

उत्तर—आस्रवतत्त्व की।

प्रश्न—शरीर आश्रित उपदेश-उपवासादि बाह्य क्रियाओं से मोक्षमार्गरूप निर्जरा मानने में कौन तत्त्व की भूल हैं ?

उत्तर—अजीवतत्त्व की।

प्रश्न—जड़कर्म तथा शरीर छूटने में जीव को मोक्षदशा होती है—ऐसी मान्यता में कौन तत्त्व की भूल है ?

उत्तर—अजीवतत्त्व की भूल है।

प्रश्न—पाप से सुख होता है और पुण्य से आत्महितरूप धर्म होता है—ऐसी मान्यता में कौन तत्त्व की भूल है ?

उत्तर—देह में देह की क्रियाओं में तथा रागादि में रुचि (कर्तव्य-ममत्व-एकत्व)

रखनेरूप वासना होने से पर पदार्थ में इष्ट-अनिष्ट अनुकूल-प्रतिकूल है ऐसा मिथ्या प्रतिभास करता है, इसलिये बाह्य में अनुकूलता की आशा, और प्रतिकूलता का भय निरंतर रखता है यह तो अजीवतत्त्व की भूल है किंतु पाप में सुख और पुण्य करने में धर्म मानना इसका अर्थ क्या? समाधान यह है कि उपरोक्त माननेवाला जीव संयोगों को अनुकूल मानकर वह बाह्य इष्ट सामग्री की प्राप्ति की भावना करता है, अनुकूल संयोग को प्राप्त करने और भोगने में सुख की अभिलाषा जो पाप ही है और यह अनुकूल सामग्री पुण्य करने से मिलती है, इसलिये वह शुभराग-पुण्य करनेयोग्य है, ऐसा मानता है। यह मान्यता में वह पुण्य को ही हितकारी धर्म मानता है। पुण्य-पापरहित निजशुद्धात्मा को उपादेय और उनके आश्रय से लाभ है—ऐसा जरा भी मानता नहीं है, यह सूक्ष्म बात है।

प्रश्न—जो जीव वास्तव में दो प्रकार का मोक्षमार्ग मानते हैं, निश्चयमोक्षमार्ग का सच्चे साधन, व्यवहार मोक्षमार्ग मानते वह उसमें भेदज्ञान नहीं करते हैं, यह किस तत्त्व की भूल है?

उत्तर—प्रथम तो मोक्षमार्ग दो नहीं है। एक ही मोक्षमार्ग है, वह वीतराग भाव है और भूमिकानुसार जो शुभराग, वह कहीं साधक भाव नहीं है, जहाँ जघन्य-मध्यम निश्चयमोक्षमार्ग है, वहाँ ऐसा राग आता है, उस व्यवहार मोक्षमार्ग नामवाला शुभराग को निमित्त जानकर उसका होना उस भूमिका में बराबर है। इसप्रकार निमित्त का ज्ञान कराने की अपेक्षा शुभराग को निमित्त-अर्थात् व्यवहार मोक्षमार्ग कहना, वह व्यवहार है, उपचार है, परमार्थ नहीं है। आंशिक वीतरागभाव के साथ जो राग है, वह भी बंध का ही कारण है—ऐसा जो नहीं मानता, उसने आस्रवतत्त्व जो बंध का ही कारण है, उसे संवर-निर्जरा का कारण माना, वह संवर-निर्जरा और मोक्षतत्त्व की भूल है।

कारण कि शुभराग या अशुभराग दोनों मोहजनित औदयिकभाव ही है, बंधभाव है, जिसमें संवर-निर्जरा नहीं है, उस भाव में संवर-निर्जरा मानना, वीतरागता का सच्चा कारण मानना संवर-निर्जरातत्त्व की भूल है। **सिद्धांत**-स्वाश्रयरूप वीतरागभाव, वही मोक्षमार्ग है चौथा गुणस्थान में श्रद्धा में परिपूर्ण और चारित्र में जघन्य वीतरागता, स्वाश्रय निश्चय धर्म का प्रारंभ होता ही है, वह मोक्षमार्ग है; साथ में भूमिकानुसार जो राग रहता है, उसे बंध का ही कारण जानकर श्रद्धा में हेय ही मानता है, वह सम्यग्ज्ञानी है।

न्याय-वीतरागी परिणति वह एक ही सच्चा साधन है, वह निश्चय है, तथा साथ में रहा

राग को साधन कहना, वह व्यवहार उपचार है। दोनों का एक साथ ज्ञान करना वह प्रमाण है।

विशेष-शुभराग भूमिकानुसार आता है, निमित्त ऐसा ही होता है किंतु वह मोक्ष का सच्चा साधन नहीं है, यह बात हेतु युक्ति और अनुभव से सिद्ध है।

१. हेतु— बंध का कारण होने से यह मोक्ष का सच्चा कारण नहीं हो सकता।

२. युक्ति— शुभाशुभराग (आस्रवतत्त्व) को स्वाश्रय द्वारा पृथक् करने से ही भेदज्ञान होता है। **नयार्थ**-असद्भूत व्यवहारनय से ऐसा ही निमित्त होता है। साधक कहता है कि निश्चयनय से वह वास्तव में साधक नहीं है, स्वाश्रय वीतरागता ही साधक है।

३. अनुभव में— स्वसन्मुख होने पर शुभाशुभभाव अनुभव में नहीं आता। **सारांश** भेदज्ञानियों के द्वारा—स्वयं एकत्व निश्चय, एकत्व-विभक्ततत्त्व अनुभव में आता है।

स्मरण होता है—चार श्रुतधामों का

ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी:—श्रुतपंचमी का महान पर्व; इस अवसर पर चार पवित्र श्रुतधामों का स्मरण होता है:—

पहला:— पवित्र श्रुततीर्थ राजगृही का विपुलाचल... जहाँ महावीरस्वामी ने श्रुतज्ञान की गंगा बहायी... और गणधरदेव ने उसे झेलकर बारह अंगों की रचना की।

दूसरा:— पवित्र श्रुततीर्थ गिरिनार की चन्द्रगुफा... जहाँ धरसेनस्वामी ने पुष्पदन्त-भूतबलि मुनिवरों को अमूल्य श्रुत का उत्तराधिकार दिया।

तीसरा:— श्रुततीर्थ अंकलेश्वर... जहाँ वह जिनवाणी पुस्तकारूढ़ हुई और चतुर्विध संघ ने श्रुत का महोत्सव किया।

चौथा:— श्रुततीर्थ मूडबिद्री... जहाँ वह जिनवाणी ताड़पत्रों पर सुरक्षितरूप से विराजमान रही, और आज हमें प्राप्त हुई। नमस्कार हो उन श्रुत दाता संतों को... और उस जिनवाणी माता को।

भजन

वस्तु स्वरूप पहिचान ले, समझ भेदविज्ञान,
पर की दृष्टि डुबा रही, निज स्वरूप को जान॥१॥
जड़ चेतन का परिणमन, भिन्न-भिन्न पहिचान,
संशय विभ्रम मोह तज, कर निज आतम ध्यान॥२॥
परनिमित्त युग युग मिले, हो न सका निजभान,
स्वानुभूति बिन जियरा, कैसा सच्चा ज्ञान?॥३॥
ज्ञान बिना जिय तू दुखी, छोड़ अहम् अज्ञान,
ज्ञाता दृष्टा रह सदा, भोग स्वरस सुख खान॥४॥
दुख सुख कोरी कल्पना, और विकारी भाव,
स्व में तू नहीं टिक सका, हैं पर में अटकाव॥५॥
तन ही जब तेरा नहीं, कैसा घर परिवार,
पर की ममता छोड़ कर अपनी ओर निहार॥६॥
है स्वतंत्र सब द्रव्य छह, भिन्न भिन्न पर्याय,
तू पर का करता बना, निज को भूला जाय॥७॥
पाप छोड़ या पुण्य कर, नहीं छूटे संसार,
शुद्धातम का ध्यान कर, होगा बेड़ा पार॥८॥
ज्ञायक तेरी आत्मा, तेरा करता कौन?
ज्ञान ज्ञान से हो सदा, पर सदैव ही मौन॥९॥
कौन कहत पुरुषार्थ बिन, सरे एक भी काज;
तू स्व में पुरुषार्थ कर, मिले मोक्ष का राज॥१०॥
मिथ्यादर्शन अनित्य वश, भ्रमित हुआ है जीव,
दृष्टि फिरी तो सृष्टि फिरी, सम्यक् सोच सदीव॥११॥
गति अनगीनती भोगली, धरे अनंतों रूप,
भटका अटका 'भँवर' तूं बिन जाने निजरूप॥१२॥

अध्यात्म संदेश पूज्य कानजी स्वामी के प्रवचन में से

णमो लोए सव्वसाहूणं

सोलहवें तीर्थंकर भगवान शांतिनाथ, चक्रवर्ती भी थे; षट्खंड के वैभव के बीच में भी उन्हें आत्मभान था कि ये कुछ मेरे नहीं हैं, न इनमें मेरा सुख है। इन सबसे भिन्न चैतन्यरूप ही मैं हूँ। ऐसे आत्मज्ञान के बल से भव-तन-भोगों से उनकी आत्मा में प्रथम से ही उदासीनता थी। मैं असंसारी, अशरीरी एवं अभोगी हूँ; भव-तन-भोग मैं नहीं; मैं भव से रहित मुक्त स्वरूपी हूँ, शरीर से रहित सिद्धस्वरूपी हूँ और इन्द्रिय भोगों से रहित अतीन्द्रिय आनंदस्वरूपी हूँ; रागादि विकार या देहादि संयोग मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसा आत्मस्वभाव का सम्यग्दर्शन साथ में ही लेकर भगवान अवतरे थे। यहाँ यह दिखलाना है कि ऐसा सम्यग्दर्शन होना, वही मुनिदशा की पूर्व भूमिका है। सम्यक्त्वरूपी भूमिका के बिना चारित्र धर्मरूपी वृक्ष नहीं हो सकता।

चक्रवर्तीपद में राग होते हुए भी भगवान को राग की भावना नहीं थी, भावना तो वीतराग होकर अपने आनंदस्वरूप में लीन होने की थी। एकबार दर्पण में देखते हुए शांतिनाथ भगवान को अपने दो रूप दिखायी पड़े अर्थात् दो भवों के प्रतिबिम्ब दिखलाई दिये, उन्हें अपने पूर्व भव का स्मरण हुआ, जातिस्मरणज्ञान हुआ, जातिस्मरण होते ही उनका चित्त संसार से अतिशय विरक्त हुआ, और मुनिदीक्षा लेने का निश्चय करके वे वैराग्य की अनित्यादि बारह भावनायें भाने लगे।—अहो, मेरा आत्मा शाश्वत चैतन्यघन अशरीरी है, भोगरहित है, भवरहित है; आनंदमूर्ति चैतन्य, वही मेरा शाश्वत शरीर है—चैतन्य प्राण से ही मेरा जीवन है। ऐसा आत्मज्ञान होने पर भी जब तक निजस्वरूप में पूर्ण लीनता न हो, तब तक पूर्ण शांति नहीं होती। इस भोग में मेरा सुख नहीं है, और भोग का जो राग है, वह भी मेरा स्वरूप नहीं है; इस राग को छेद के चैतन्य के निजानंद में जितना मग्न होऊँ—उतना ही सुख है और वही मेरा स्वरूप है। इसप्रकार भगवान दीक्षा भावना (अर्थात् स्वरूप में लीन होने की भावना) भाते थे। दीक्षा यह स्वरूप में लीनता के बिना मुनिदशा नहीं हो सकती।

भगवान को जब वैराग्य होता है, तब उसी दिन वे मुनि होते हैं। वैराग्य होने के बाद भी लम्बे काल तक (एक वर्ष तक) भगवान गृहवास में रहे—ऐसा नहीं हो सकता। अरे,

चारित्रमोहरूपी बंधन जिसका टूट गया, वह गृहवास के बंधन में कैसे फँसे रहे ? वैराग्य होने के बाद भी तीर्थंकर भगवान एक वर्ष तक गृहवास में रहकर दान देते हैं—ऐसा जो मानते हैं—उसने भगवान के उत्कृष्ट वैराग्य को पहचाना ही नहीं है। जैसे नष्ट प्राण मृतक शरीर श्मशान में से वापस घर नहीं आते, वैसे नष्ट मोह चैतन्यबिम्ब जिनराज वैराग्य होने के बाद गृहवास में रहते नहीं; उसे कोई रोक नहीं सकते। वैराग्य होते ही शांतिनाथ भगवान छियानवें हजार रानियों को क्षण में छोड़कर मुनि हो गये। विलाप करती हुई रानियों को छोड़कर आप वन में अपनी आनंदमय चैतन्य रमणी के पास चले गये। भगवान के वैराग्य की स्तुति करते हुए एक कवि कहते हैं कि—

छयानवें हजार नार छिनक में दीनी छार,
अरे मन! ता निहार काहे तू डरत है?
छहों खंड की विभूति छांडत न बेर कन्हीं,
सैन्य चतुरंगनसों नेह न धरत है।
नौ निधान आदि जे चउदह रतन त्याग,
देहसेती नेह तौरी वन विचरत है।
ऐसी विभौ त्यागत विलम्ब जिन किन्हों नाहि,
तेरे कहो केती निधि सौच क्यों करत है।

चक्रवर्ती भगवान शांतिनाथ जब गृहस्थरूप में हजारों रानियों के प्रसंग में थे, तब भी वे उसमें कहीं भी सुख नहीं मानते थे, अंतर में वे सबसे उदास थे। मेरा सुख मेरे आत्मा में ही है—ऐसा स्वानुभव से जानते थे और बार-बार उसका निर्विकल्प ध्यान भी करते थे। रानियाँ भी समझती थी कि ये भोगी नहीं किंतु संसार में योगी हैं। किसी भी क्षण में हमारे ऊपर का राग तोड़ के वे मुनि होके वन में चले जायेंगे। हम उन्हें रोक नहीं सकेंगी। वे तो अतीन्द्रिय आनंद के भोक्ता है, उसी में उसका प्रेम है।

देखो, यह मुनियों की वैराग्यदशा! शांतिनाथ तीर्थंकर भगवान का तो यह दृष्टांत है। दूसरे भी सभी मुनियों की ऐसी वैराग्यदशा होती है; ऐसी अतिशय वीतरागता के बिना मुनिदशा नहीं हो सकती।

भगवान को मति-श्रुत-अवधि तीन ज्ञान तो पहले से (पूर्व भव से) थे; किंतु

जातिस्मरणज्ञान पहले से नहीं होता, वह बाद में हुआ। भगवान को जब जातिस्मरण हुआ, तब संसार में विरक्त होकर वे ऐसा चिंतन करने लगे कि—अरे, इसके पहले के भव मैं सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्रदेव था, और इसके पहले के भव में मैं मुनि था, उस वक्त मेरी स्वरूप स्थिरतारूप साधकदशा अपूर्ण रह गई और राग कुछ बाकी रह गया, इससे यह अवतार हुआ। अब उस राग का सर्वथा छेद करके इसी भव में केवलज्ञान प्रगट करके मैं मुक्त होनेवाला हूँ। मेरा अवतार संसार के भोग के लिये नहीं है, किन्तु आत्मा के मोक्ष के लिये मेरा अवतार है। मैं भगवान होने के लिये अवतरित हुआ हूँ। स्वभावभाव के उग्र आलंबन के बल से यह संसार, शरीर व भोगों से विरक्त होकर असंसारी अशरीरी व अभोगी ऐसे अतीन्द्रिय आत्मस्वभाव में लीन होकर वन-जंगल में चैतन्य के आनंद की मस्ती में झूलने के लिये मेरा अवतार है। इसप्रकार भगवान संसार से विरक्त होकर आत्मा के आनंद की ओर ढले। अहो, धन्य उनका अवतार! धन्य वह मुनिदशा!!

सभी तीर्थंकर भगवंतों वैराग्य होने पर ऐसी मुनिदशा धारण करते हैं। दिगम्बर-मुद्रा को जिनमुद्रा कहते हैं; ऐसी दिगम्बर जिनमुद्रा के बिना जैनधर्म में मुनिपना कभी नहीं होता—ऐसा अनादि वस्तुस्वभाव है। मुनि के शरीर पर कुछ भी वस्त्र नहीं होते। कमण्डल भी पानी पीने के लिए नहीं होता, मात्र देह की शुचि के लिए कमण्डल होता है; किंतु तीर्थंकरों को तो कमण्डल भी नहीं होता, क्योंकि उनका देह स्वभाव से ही अशुचि से रहित होता है।

मुनि की परिणति इतनी अंतर्मुख वीतराग हो गई है कि वस्त्रादि बाह्य परिग्रह के ग्रहण की वृत्ति ही नहीं उठती। वे बार-बार निर्विकल्प होकर स्वानुभूति के अप्रमत्त आनंद में झूलते हैं। 'णमो लोए सव्वसाहूणं' के द्वारा हम ऐसे मुनि भगवंतों को नमस्कार करते हैं।

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

ज्ञानी के हृदय में भगवान निवास करते हैं

मुनियों के मन में कौन निवास कर रहा है ? अहा, मुनियों के ज्ञान में अतीन्द्रिय आनंद से भरा हुआ संपूर्ण आत्मतत्त्व निवास कर रहा है।

मुनियों के मन में सर्वज्ञ भगवान (परम पद) निवास कर रहे हैं; राग उनके मन में निवास नहीं करता और न ही देह की क्रिया उसके ज्ञान में निवास करती है।

तुझे मुनि के जीवन जैसा बलवान सुखमय जीवन प्राप्त करना हो तो तू अपने ज्ञान में शुद्ध आत्मा का प्रवेश करा दे और रागादि को ज्ञान में से सर्वथा बाहर निकाल दे मुनियों के ज्ञान में रहा हुआ यह नित्य सुखस्वरूप भगवान आत्मा का सुख विषय सुख में लीन ऐसे जीवों को सर्वथा दुर्लभ है। जिनके मन में विषयों का निवास है, उनके मन में परमात्मा का निवास कहाँ से हो ?

मुनियों के समान साधक धर्मात्माओं ने भी अंतरंग में अपने शुद्ध आत्मा को ठहराया (स्थापन किया है) और रागादि परभाव तो उनके ज्ञान से भिन्न रह गये हैं। गृहस्थ धर्मात्मा के मन में (रुचि में—ज्ञान में) घर नहीं बसाया किंतु चेतन भगवान को बसाया है।

ऐसा जीवन धर्मी का जीवन है। जिनके हृदय में राग की रुचि, विषय-कषायों का निवास और पुण्य की अभिलाषा रहती है, उनके हृदय में भगवान शुद्ध आत्मा रहता नहीं अर्थात् वह भगवान के मार्ग में आया ही नहीं। विषय-कषायरूपी परभाव में लिप्त ऐसा जीवन सच्चा जीवन नहीं है। जिसने अपने हृदय में विपरीत अभिप्राय रहित श्रद्धा-ज्ञान को शुद्ध करके परम आत्मतत्त्व को बसाया है, वहाँ जीवन पलट जाता है, और सुख का समुद्र अंदर से उछलने लगता है। ऐसा जीवन धर्मी जीता है, वही सच्चा जीवन है।

(नियमसार-प्रवचन में से)

अध्यात्म-गीत

(तर्ज - देख तेरे परिणाम की हालत)

चिदानंद चैतन्य प्रभु का, कर ले तू गुणगान;
कितना अवसर मिला महान ॥टेक ॥
दुर्लभतर से नरभव पाये, दुर्मतिवश तूँ इसे गमाये।
धर्मभावना कभी न लाये, यातें जग में दुःख ही पाये ॥
छोड़ राग-रुचि, घातक हैं अति, कर ले आतमध्यान।
कितना अवसर मिला महान ॥१ ॥
निज परिणति का कर्ता तू है,
कर्मरूप परिणाम है तुझसे।
नहीं अन्य का काम, कर ले निश्चय भेदविज्ञान।
कितना अवसर मिला महान ॥२ ॥
गुण-पर्ययवत् द्रव्य सभी है,
एकरूप स्थिति नहीं होती है,
वस्तु स्वयं निज कर्म की कर्ता, यह सिद्धांत सभी गुण दाता,
कर अनुभव तो बन भगवान
कितना अवसर मिला महान ॥३ ॥
ग्रह भूतार्थ तो समकित पावे, आतम ज्योति सत्य दिखलावे,
सुखी निरंतर वह बन जावे, मोह-क्षोभ की हान्।
सदा चिद्रूप बनो-भगवान्
कितना अवर मिला महान ॥४ ॥

—अमरचंद जैन, शाहपुर (सागर)

विविध समाचार

राजधानी भोपाल (म.प्र.) में महावीर जयंती का विशाल आयोजन

भोपाल—में स्थानीय दिगंबर जैन समाज द्वारा तीन दिन तक 'महावीर जयंती' के बड़े उत्साहमय कार्यक्रम हुए।

तारीख १० अप्रैल को तात्याटोपेनगर में नूतन भव्य जिनालय के प्रांगण में आमसभा हुई जिसकी अध्यक्षता का स्थान कोटा निवासी मनोज्ञवक्ता अध्यात्म पुरुष श्री 'युगल किशोर'जी ने सुशोभित किया। श्री युगलजी तथा अन्य विद्वानों के सारगर्भित भाषण हुए।

तारीख ११ चौक-भोपाल में विशाल प्रभातफेरी, जिनमंदिर में समूह पूजन पश्चात् १० से २ बजे तक विशाल समारोह, रथयात्रा-जुलूस निकाला गया, उसमें कम से कम २० हजार स्त्री-पुरुषों ने सहयोग दिया। ३ से ४ तक विनयकुमार 'पथिक' द्वारा भक्तिरसमय मधुर संगीत, ४ से ५ श्री युगलजी का आध्यात्मिक प्रवचन हुआ। रात्रि को ९ से चौक में विराट आमसभा राज्यमंत्री ब्रजलालजी वर्मा की अध्यक्षता में हुई। ग्वालियर की राजमाता श्री विजयाराजे सिंधिया ने जैनधर्म की महता बताई। तथा अहिंसा के संबंध में अति सूक्ष्मतत्त्व और उनके रहस्य को खोलकर प्रगट करता हुआ महत्त्वपूर्ण प्रवचन श्री 'युगल'जी ने दिया। 'पथिक'जी के सुमधुर संगीतमय भजनों ने राजमाता एवं समस्त सभा को मंत्रमुग्धकर, जैनधर्म की महत्ता बतलाकर अत्यंत प्रभावित किया। राजमाता द्वारा महावीर भगवान का संदेश सुनने के लिये ५० हजार की संख्या में श्रोतागण उपस्थित थे।

तारीख १२ को एच.ई.एल. विभाग में मंत्री श्री सकलेचा की अध्यक्षता में विशाल आमसभा हुई। इसमें सकलेचाजी के साथ भी अनेक विद्वानों के सुंदर प्रवचन हुए। पूज्य कानजीस्वामी का जन्मोत्सव दिन भी बड़ा उत्सब सहित मनाया गया था। —मधुकर जैन

(गतांक में रह गया था, इसलिये इस अंक में दिया गया है।)

खैरागढ़—(म.प्र.) यहाँ सभी श्वेताम्बर जैन थे। पूज्य स्वामीजी के उपदेश से आज अनेक घर शुद्ध दिगंबर धर्म में हैं। सं. २०१५ में श्री कानजीस्वामी खैरागढ़ पधारे थे, तब नया जिनमंदिर बन चुका था, उसमें जिनबिम्ब-वेदी प्रतिष्ठा की थी। इस साल स्थानीय मंडल ने चैत्र सुदी १ को दसवीं वर्षगाँठ बड़े भारी उत्सव से मनाकर जिनमंदिर पर सुंदर कलश तथा ध्वजा आरोहण किया, नागपुर आदि से अधिक संख्या में साधर्मीगण आये थे।

पूज्य स्वामीजी का इस साल सौराष्ट्र में विहार हुआ। उसमें प्रत्येक स्थान पर हजारों नये-नये धर्मजिज्ञासुओं का परम हर्ष भरा परिचय हुआ। जहाँ-जहाँ आप पधारते, वहाँ सर्वत्र धार्मिक उत्सव और सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्व-चर्चा का वातावरण फैल जाता था। एक नयी धार्मिक चेतना (जागृति) सारी नगरी और गाँव में आ जाती थी।

मोरबी— चैत्र सुदी ८ से ११ वहाँ प्रतिदिन विशाल सभा में प्रवचनों, शंका-समाधान-जिनेन्द्र मंदिर में भक्ति आदि कार्यक्रम होते थे। उपरांत सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय शाला की व्य०ब्रह्मचारी बहिन श्री बिन्दुबहिन तथा छात्रों के भजनों का सुंदर कार्यक्रम प्रस्तुत किया था, जिनेन्द्रदेव की रथयात्रा भी निकली थी।

ववाणीया— चैत्र सु. ११ श्री राजचंद्रजी-जन्मधाम के ट्रस्टियों की विनती से गुरुदेव ववाणीया पधारे आपके दर्शन हेतु वहाँ बड़ा मेला लग गया था। सागर निवासी सेठ श्री भगवानदासजी शोभालालजी आदि भी आये, यहाँ सब प्रकार से उत्तम कार्यक्रम रहा। पूज्य स्वामीजी ने 'अपूर्व अवसर' नामक महान काव्य में से पाँच पद अध्यात्म मस्ती सहित गाये, और उनके भावों का विवेचन द्वारा दिगंबर मुनिदशा समझाकर सर्वप्द की भावना में सबको प्लावित कर दिया। सादि अनंत 'अनंत समाधि सुखमय' ऐसा सिद्धपद की बहुत उत्तम ढंग से महिमा की, श्री राजचंद्रजी के पवित्र आध्यात्मिक जीवन की अनेक विशेषताओं को याद करके उन्हीं का वर्णन किया गया।

वांकानेर— यहाँ बड़ा भव्य स्वाध्यायमंदिर तथा जिनमंदिर है। भगवान महावीर जन्म जयंती महोत्सव निमित्त से श्री जी की भव्य रथयात्रा निकली थी। स्वामीजी रथयात्रा में थे रथयात्रा का विशाल जुलूस शहर में चल रहा था उसीसमय श्वेताम्बर जैन संघ की रथयात्रा रास्ता में एकत्र हुई तो परस्पर सभी ने आनंद प्रगट किया। दोनों रथयात्रा में आनंद का वातावरण गूँज उठा और साथ-साथ मिलकर भगवान महावीर की जय-जयकार करके सभी ने अपना उत्साह प्रगट किया, शांतिपूर्वक दोनों संघ की रथयात्रा जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थान पहुँची। परस्पर प्रेम-शांति का एक उदाहरण हुआ। वीरनाथ जिनेन्द्र का ढ़ाई हजारवाँ निर्वाणोत्सव सम्मिलित मनाने का अवसर समीप आ रहा है। जैन समाज को ऐसा प्रसंग और परस्पर विशेष प्रेम बढ़े ऐसा होना जरूरी है। चार दिन वांकानेर शहर ने स्वामीजी से बहुत लाभ उठाया पश्चात्।

चोटीला— यहाँ चंद्रप्रभु जिनेन्द्र का मंदिर है। यहाँ से होकर—

सुरेन्द्रनगर-वढवाण, जोरावरनगर तीन शहर में ११ दिन का कार्यक्रम था। हजारों की संख्या में धर्म जिज्ञासु समाज ने पूज्य स्वामीजी के प्रवचन तथा तत्त्वचर्चा का लाभ लिया हरेक जगह बड़े-बड़े मेला लग जाते थे।

वींछिया—नगरी में ४००० उपरांत मेहमान आये थे, जन्म-जयंती का समाचार गतांक में दे चुके हैं।

उमराला—वैशाख सुदी ७ पूज्य गुरुदेव जन्मधाम में पधारे उमंग भरा भारी स्वागत हुआ। सभामंडप में मंगल प्रवचन पश्चात् अपने बचपन और माताजी उजमबा का वात्सल्य पूर्ण संस्मरण याद आते थे सुनाते थे। उन्हें सुनते समय श्रोताओं को भी हृदय में प्रेम भरा रोमांच-मधुर गुदगुदी पैदा हो जाती थी। उजमबा स्वाध्याय भवन में सीमंधर भगवान का जिनमंदिर है, स्वामीजी ने अर्घ चढ़ाकर भगवान का पूजन किया, प्रवचन में तो सारा शहर और ग्राम्यजनों का बड़ा भारी प्रेम भरा मेला और अद्‌भुत आकर्षण था।

अपूर्व तत्त्व को लोग समझ सके ऐसी शैली में पूज्य स्वामीजी ने समयसार गाथा २०६ का उपदेश दिया। प्रवचन के पूर्व-पश्चात् भी अहो यह तो हमारे गाँव के महाराज हमारे प्रभु... ऐसा गौरवमय महात्म्य के साथ भावभीगा हृदय से सारा गाँव की जनता, वृद्ध, वृद्धायें गुरुदेव के दर्शन करने आते थे, खुशियाँ मनाते थे, सोनगढ़ से सात कोस समीप उमराला कस्बा है, संवत् १९७८ में ओंमकारनाद की झँकार, भगवान की दिव्यध्वनि का संस्मरण, जिनवाणी की परम महिमा यहाँ उमराला में हो आये थे... उस समय गुरुदेव की उम्र ३३ साल की थी, ३३ साल पूर्व सुनी हुई तीर्थंकर की दिव्यवाणी के झंकार उन्हीं की आत्मा में गुंजारव कर रहे थे... अर्थात् वही जिनवाणी अनुसार सन्मार्ग के सिवा दूसरा कोई मार्ग में आपको किंचित् संतोष नहीं था। अतः सच्चा प्रयत्न द्वारा आपने 'आत्मोपादन सिद्धं स्वयं अतीशयवत्' सर्वज्ञ का मार्ग प्राप्त करके निःसंदेह होकर जगत में उसी जैनधर्म को प्रसिद्ध किया। यहाँ दो दिन के कार्यक्रम में घाटकोपर बंबई की दिगम्बर जैन भजन मंडली ने भक्ति का सुंदर कार्यक्रम प्रस्तुत किया। अति उमंग भरा वातावरण देखकर यह उमराला नगरी मानो छोटी अयोध्या नगरी हो ऐसा जान पड़ता था। यहाँ से गुरुदेव लींबडी पधारे।

लींबडी—यहाँ १० वर्षीय जिनमंदिर की वर्षगाँठ का भारी उत्सव मनाया। घाटकोपर भजनमंडली ने यहाँ भी सुंदर कार्यक्रम दिया। वैशाख सुदी १३ जिनेन्द्रदेव की भव्य रथयात्रा निकाली थी शहर की जनता ने छह दिन तक उत्साह सहित प्रवचन-चर्चावार्ता का लाभ

लिया। श्वेताम्बर भाईयों ने बहुत सहयोग दिया। सभी को धन्यवाद।

सोनगढ़—वैशाख सुद १५ पूज्य गुरुदेव सोनगढ़ पधारे, भक्तों ने परम प्रेम उमंग से स्वागत किया। शांतधाम में अध्यात्मवर्षा शुरु हुई। वदी १ से धार्मिक शिक्षणवर्ग शुरु हुआ, कक्षाओं में ३५० उपरांत शिक्षार्थी थे, महाराष्ट्र के सोलापुर आदि से अनेक शिक्षक भी आये थे। परीक्षा पश्चात् ईनाम वितरण हुआ था।

वदी ६ को समवसरण-प्रतिष्ठा की २७वीं वर्षगाँठ मनाई, जिनेन्द्र रथयात्रा निकाली थी। वदी ८ स्वाध्यायमंदिर तथा उनमें श्री समयसार शास्त्रजी के स्थापना की ३१वीं वर्षगाँठ मनाई। शास्त्रजी की रथयात्रा निकाली गई थी, भक्ति स्वाध्याय मंदिर में रखी गई थी। जेठ सुदी ५ श्रुतपंचमी का उत्सव भी आनंद से मनाया गया। जिनवाणी माता की रथयात्रा निकाली थी।

सोनगढ़—तारीख १६-६-६८ पूज्य गुरुदेव सुखशांति से विराजमान हैं। प्रवचन में सवेरे श्री राजमलजी पाण्डे विरचित समयसार कलश-टीका तथा दोपहर मूल शास्त्रजी समयसारजी का प्रवचन होते हैं। मुमुक्षुगण अपना उत्तम अवसर को स्वाध्याय, सत्संगति, पूजन, भक्ति, तत्त्वचर्चा, श्रवण, ग्रहण धारण-मनन, चिंतन द्वारा शांति से सफल बना रहे हैं।

बीना (म.प्र.)—म.प्र. श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल की ओर से यहाँ जैनधर्म शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया था। तारीख १८-५-६८ से ३-६-६८ तक शिविर लगा। हमने भोपाल से श्री मधुकरजी को बीना भेजा था, आशा से अधिक मात्रा में आयोजन सफल हुआ। प्रात: ५ से ६ प्रौढ़ वयवालों के लिये जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, ७ से ८ सामूहिक पूजन, ८ से ९ बालकों के लिये क्लास। मध्याह्न में ३ से ४ महिलाओं के लिये छहढाला, ७ से ८ पाठशाला, ८ से ९ जिनेन्द्रभक्ति, ९ से १० शास्त्र-प्रवचन, इसप्रकार प्रतिदिन सात घण्टे तक कार्यक्रम चलता था। परीक्षा में विशेष उत्तीर्णों को सेठ सि. श्री नंदनजी द्वारा इनाम दिया गया। करीब १५० पुरुष, महिलायें और बच्चों ने भाग लिया, सभी की उपस्थिति ली जाती थी। म.प्र. में अशोकनगर, विदिशा, मौ, भिंड, राधौगढ़, कानपुर, नागपुर, जावरा, महिदपुर, मंदसौर, नारायणगढ़ आदि के मुमुक्षु मंडल की ओर से शिक्षण शिविर लगाने की स्वीकृति (मांगी) थी। इसके लिये विद्वानों के जवाब नहीं आने से उपरोक्त स्थानों पर क्लास नहीं लगवा सके, कोटा में शिक्षण शिविर श्री युगलजी एम.ए. साहित्यरत्न द्वारा चल रहे हैं।

सूरजमल जैन
मंत्री मुमुक्षु मंडल, भोपाल

श्री टोडरमलजी स्मारक भवन जयपुर द्वारा प्रशस्त कार्यक्रम

जैन पाठ्यक्रम समिति की बैठक सोनगढ़ में श्रीमान् सेठ नवनीतभाई चुनीलाल झवेरी बंबई की अध्यक्षता में दिनांक २८/२९ और ३० मई १९६८ को हुई, जिसमें समिति के सदस्यों में निम्नांकित महानुभाव उपस्थित थे।

(१) श्रीमान् पंडित खेमचंद जेठालाल सेठ, सोनगढ़ (२) श्रीमान् पंडित हिम्मतलाल जेठालाल शाह, सोनगढ़ (३) श्रीमान् बाबूभाई चुनीलाल मेहता, फतेहपुर (४) श्रीमान् ब्रह्मचारी हरिभाई, सोनगढ़ (५) श्रीमान् पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', दिल्ली (६) श्रीमान् पंडित रतनचंदजी न्यायतीर्थ विदिशा, (७) श्रीमान् पूरनचंदजी गोदीका, जयपुर (८) श्रीमान् नेमीचंदजी पाटनी, जयपुर (९) श्रीमान् पंडित हुकमचंद शास्त्री, एम.ए., जयपुर।

विशेष आमंत्रित महानुभावों में—

(१) श्रीमान् रामजीभाई माणेकचंद दोशी, सोनगढ़ (२) श्रीमान् महेन्द्रकुमारजी सेठी, जयपुर (३) श्रीमान् पंडित प्रो. देवचंदजी, सहारनपुर (४) श्रीमान् पंडित अनंतरायजी, सोलापुर (५) श्रीमान् पंडित हिम्मतभाई, बंबई (६) श्रीमान् पंडित चंदुभाई सोनगढ़ उपस्थित थे।

उक्त मीटिंग में निम्नांकित निर्णय लिए गये।

१— सर्वप्रथम श्रीमान् सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंदजी वाराणसी, श्रीमान् सिद्धांताचार्य पंडित कैलाशचंदजी वाराणसी, श्रीमान् पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी, एवं युगलकिशोरजी एम.ए. कोटा तथा श्रीमान् पंडित चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ जयपुर के आये हुए पत्र सुनाये गये।

२— बारह वर्षीय प्रस्तुत प्रस्तावित पाठ्यक्रम एवं आदर्श पाठों को कुछ आवश्यक संशोधनों के साथ अंतिमरूप दिया गया।

३— आदर्श पाठों के अतिरिक्त प्राप्त पाठों की भी सबके समक्ष पठन हुआ और उन्हें समुचित संशोधनों के साथ स्वीकृत की, यह निर्णय किया गया कि उन्हें शीघ्र ही पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाये।

४— शेष पाठ लिखने के लिए विद्वानों को वितरित किये गये तथा उससे जून के अंतिम सप्ताह तक सोचे गये पाठ लिखने के लिए प्रार्थना की गई।

मंत्री—नेमीचंद पाटनी, जयपुर (राज.)

तीर्थंकरों का 'अंतरीक्ष'त्व दिगम्बर जैन सिद्धांत में ही है
श्वेतांबर आम्नाय में 'अंतरीक्ष'त्व नहीं है

शिरपुर—(महाराष्ट्र अंतरीक्ष पार्श्वनाथ) का 'श्री पवली दिगम्बर जैनमंदिर' की मालिकी अधिकार संबंधी केस का फैसला न्यायाधीश श्री रत्नपारखजी ने पूर्णतया दिगंबर समाज अनुकूल और श्वेतांबर समाज के विरुद्ध में दे दिया है। 'बिना डग भरे जाकी अंतरीक्ष चाल और आसन है (प्राचीन दिगंबर आचार्य श्री जिनसेनादि तथा कविवर बनारसीदास) 'अंतरीक्ष पार्श्वनाथ' में अंतरीक्ष शब्द ही दिगंबरत्व सिद्ध करते हैं—इसप्रकार युक्ति और शास्त्राधार से महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध धाराशास्त्री श्री वि.वा.समुद्रजी ने कोई में साबित किया है 'अंतरीक्षत्व' यह मात्र पार्श्वनाथ भगवान का नहीं किंतु दिगंबर जैनों में २४ आदि सभी तीर्थंकरों का विशेषण है। 'अंतरीक्ष' का अर्थ होता है आकाश में अद्धर। तीर्थंकरों को केवलज्ञान प्रगट होने के पश्चात् वो सहजरूप से पृथ्वी से ५०००, धुनष्य (बीस हजार हाथ) ऊँचे ही आकाश में अंतरीक्ष विराजते हैं या गमन करते हैं, नीचे पृथ्वी पर चलते नहीं; यह निरपवाद नियम है; इसलिए तीर्थंकर भगवंतों, 'अंतरीक्ष' है ऐसा अंतरीक्षत्व दिगम्बर जैन समाज में ही मान्य है; श्वेतांबर समाज में ऐसा नहीं माना है, इसलिये श्वेतांबर में अंतरीक्षत्व नहीं होता। अत: 'अंतरीक्ष-पार्श्वनाथ' में अंतरीक्ष विशेषण वही बात सिद्ध करती है कि यह शिरपुर के जिन मंदिर (दिगंबरीय) जैन सिद्धांत के अनुसार हैं। ('प्रेरणा' मराठी पत्र के आधार से)

इंदौर में शिक्षण शिविर

जैनधर्म के परिज्ञान कराने हेतु २० मई से ९वीं जून तक तृतीय वर्षीय जैनतत्त्वज्ञान शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया था। शिविर का उद्घाटन दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री नवनीतभाई सी. जवेरी बंबई द्वारा संहितासूरि पंडित श्री नाथूलालजी शास्त्री की अध्यक्षता में रखा गया था। प्रवचन तथा शिक्षण कक्षाओं के लिये विद्वानों को बुलाया गया था। आयोजन में रुचिपूर्वक बड़ी संख्या में समाज ने लाभ लिया। प्रवचनकारों में पंडित हिम्मतभाई बंबई, श्री नवलचंदभाई तथा श्री खेमचंदभाई द्वारा विशेष उत्साह उपरांत धर्म प्रभावना को महत्त्वपूर्ण बल मिला।

अध्यक्ष—रतनलाल गंगवाल
जैनधर्म शिक्षण समिति, इंदौर

समाधिमरण महोत्सव के खास समाचार

गुना—श्री गैंदीबाई धर्मपत्नी राजमलजी (जैन स्टोर गुना) ने अपनी लघु उम्र में ही तत्त्वज्ञान और विशेष जागृति सहित देह त्याग किया, आपने अनेक मंगल कार्य किये, जिनेन्द्र की वाणी पर अटूट श्रद्धा, अति असाता (बीमारी) होने पर मिथ्यात्व को न छूकर उपादेयरूप निजपरमात्मतत्त्व को ही उत्तम-मंगल-शरणरूप माना है। आप कई बार सोनगढ़ में रही, पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों का लाभ लिया, उसी का यह परिणाम है कि वह मृत्यु के अवसर को पवित्र महोत्सव मानती रही, देह और आस्त्रवों से भिन्न निज आत्मा का चिंतन करती रही।

पूछने पर एक ही उत्तर था कि मेरा लक्ष्य आत्मानुभूति ही है, जो मैंने सोनगढ़ में ग्रहण किया, पढ़ा उसी का प्रयोग कर रही हूँ। स्वामीजी का प्रवचन टेपरील द्वारा ध्यानपूर्वक सुनती थी, आपने मंडल की बहुत सेवायें की है जो चिरस्मरणीय है। धर्म में अनेक प्रकार से पवित्र प्रभावना की है। उनकी पुण्य स्मृति में ५००१ रुपये विविध संस्था के लिये दिया गया है।

केवलचंद पांड्या, गुना (म.प्र.)

खास विज्ञप्ति

लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका, जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-२, द्रव्य संग्रह आदि पाठ्यपुस्तक जो १० मास से नहीं मिलते थे, उनको छपने के लिये प्रेस में दे रहे हैं, शीघ्र छप जायेगा। जो पूर्व में ग्राहक हो चुके हैं, उन्हीं से भी प्रार्थना है कि आप फिर से आपका ऑर्डर सूचित करें, शिकायत या सूचना भी दें।

'आत्मधर्म' पोस्टेज आदि की महंगाई होने पर मात्र तीन रुपया में बारह मास तक दिया जाता है। प्रत्येक धर्मप्रेमी से प्रार्थना है ग्राहक संख्या बढ़ाकर चंदा मनीआर्डर द्वारा शीघ्र भेज दे।

दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

गुरुदेव का उपकार

वैशाख शुक्ला दूज यानी आनंद का दिन... आज के दिन माता उजमबा को 'पुत्ररत्न' की प्राप्ति हुई, परंतु हमें तो अपना 'जीवन' मिला, धर्मरत्न की प्राप्ति हुई। आपका तो जन्म हुआ परंतु उस जन्म ने अपने को अनंत जन्म मिटा दिये। अहा, गुरुदेव के उपकार की क्या बात! वे स्वयं आराधना की धुन लगाकर हमें भी निरंतर आराधना के उपदेशरूपी अमृत का पान करा रहे हैं। अरे, प्यासे को ठण्डा पानी पिलानेवाले के प्रति भी मन में उपकारवृत्ति जागृत होती है तो आराधना के उपदेशरूपी शांतजल का पान करानेवाले और अनंत कालीन मोह तृषा को मिटानेवाले ऐसे गुरुदेव के उपकार की क्या बात! भव-भव में वह उपकार कैसे भुलाया जा सकता है?

आत्मार्थी जीव की प्रिय में प्रिय वस्तु शुद्धचैतन्यतत्त्व; उस चैतन्य की प्राप्ति का मार्ग जिनसे प्राप्त हुआ, ऐसे संत-धर्मात्माओं के प्रति आत्मार्थी के हृदय में भक्ति के स्रोत बहते हैं। परम उपकारी गुरुदेव के मंगल-जन्मोत्सव के अवसर पर हम भावना भायें कि वे शत-शत वर्ष तक अपने को आनंदामृत का पान कराते रहें और उनकी मंगल छाया में हम शुद्धचैतन्य की आराधना प्राप्त करें।

सबसे सुंदर नगरी

लंका विजय के पश्चात् अयोध्या में राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक हुआ और सर्व परिजनों एवं पुरजनों को इच्छित पुरस्कार देकर सन्मानित किया। भरत से भी पूछा कि—'भाई, तुम्हें कौन-सा नगर चाहिये?'

तब वैरागी भरत कहते हैं:—'बंधुवर! मुझे मोक्षनगरी चाहिये; मैं मोक्षनगरी को अपनी स्थायी राजधानी बनाना चाहता हूँ।'

रामचंद्रजी कहने लगे—'भाई, वहाँ तो हम दोनों साथ जायेंगे, परंतु इस समय मैं तुम्हें कोई सुंदर नगरी देना चाहता हूँ।'

भरत बोले—'भाई, मोक्षनगर जाने में दूसरों का साथ कैसा? वहाँ तो जीव अकेला ही जाता है; दूसरा कोई साथ नहीं आता... और उस नगरी से सुंदर दूसरी कोई नगरी नहीं है—जिसकी मुझे इच्छा हो! मोक्षनगर ही सच्चा शाश्वत धाम है; उसके सिवा मृत्युलोक के समस्त नगर तो नाशवान एवं किराये के मकान जैसे हैं। मैं तो मोक्षनगर की राह पर जाना चाहता हूँ। मोक्षनगर ही जगत में सबसे सुंदर नगर है।' ('सन्मति' मराठी के आधार पर)

नये प्रकाशन

छहढाला (सचित्र)

सर्वज्ञ-वीतराग कथित सर्व शास्त्रों के साररूप यह ग्रंथ पाठय-पुस्तकरूप में भी जैन समाज में अति-प्रचलित है। इसमें पंडित श्री दौलतरामजी ने जैन-तत्त्वज्ञान को गागर में सागर की भाँति भर दिया है। रंगीन चित्रों के कारण पढ़ने में विशेष रुचि और समझने में सरलता रहती है। पृष्ठ संख्या २१०, लागत मूल्य-१-५० होने पर भी मात्र १) में; कमीशन नहीं है।

अपूर्व अवसर-प्रवचन

[श्रीमद् राजचंद्रजी कृत 'अपूर्व अवसर' काव्य पर पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचन]

यह काव्य अत्यंत रोचक, आत्मिक उत्साहमय, अध्यात्मरस से भरपूर बारंबार पढ़ने योग्य हैं; खूब माँग होने से यह इसकी तीसरी आवृत्ति है। इस बार इसमें पंडित प्रवर श्री टोडरमलजी के सुपुत्र पंडित श्री गुमानीरामजी कृत बृ० समाधिमरणस्वरूप तथा पंडित जयचंदजी कृत बारह भावना का समावेश किया है।

श्री सेठी ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ संख्या १८०, मूल्य १)५०, थोक मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन।

चिद्विलास

अनुभवप्रकाश, आत्मावलोकन, ज्ञानदर्पण, अध्यात्म-पंचसंग्रह, भावदीपिकादि ग्रंथों के कर्ता, अध्यात्मतत्त्व द्रव्यानुयोग के विशेषज्ञ अधिकारी, अनुभवी विद्वान श्री दीपचंदजी शाह कासलीवाल कृत यह 'चिद्विलास' ग्रंथ जो प्रवचनसार आदि परमागम के संक्षेप साररूप है; अनेक शास्त्रों के गहन अध्ययन चिंतन के फलरूप सुंदर, रोचक और प्रौढ़ रचना है। हरेक स्वाध्याय प्रेमी को बारंबार पढ़नेयोग्य है।

सेठी ग्रंथमाला से प्रकाशित दूसरी आवृत्ति पृ० सं० १९६, मूल्य १-५०, थोक मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन पोस्टेज अलग।

प्राप्तिस्थान : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :
मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)